सिद्धयोग

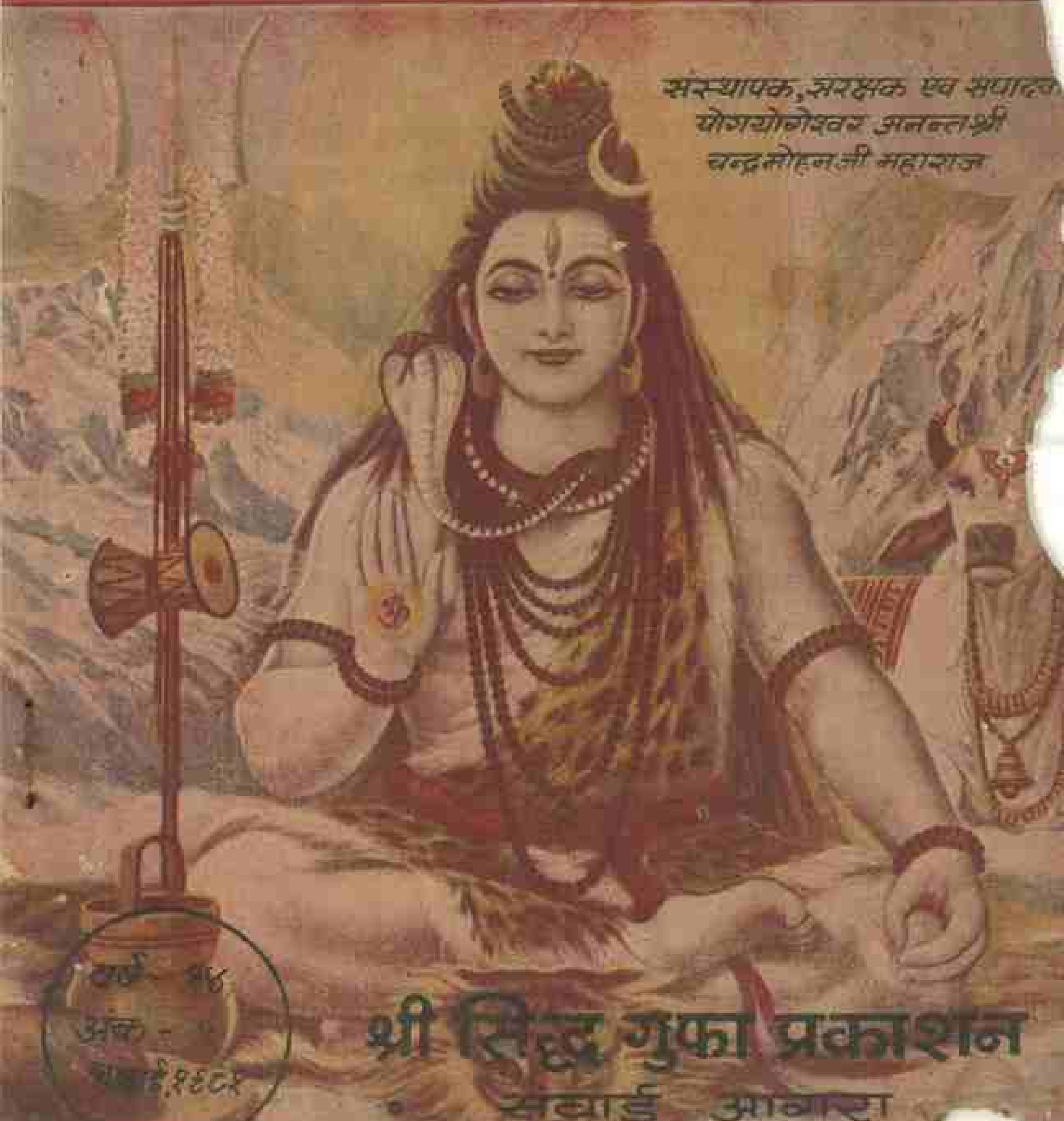

संस्थापक, संरक्षक एवं संपादक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष १८
अंक - [illegible]
[illegible] १९८२

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सवाई आगरा

इस अंक में—

प्रकाशक
श्री सिद्धगुफा, सवाई

- प्राप्य वरान्निबोधत — १
- अन्तरङ्ग योग का प्रथम सोपान-धारणा (विशेष लेख)
  योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज — २
- योग - चिकित्सा
  श्री गिरीशदेव वर्मा — ५
- अन्तर्मुखी (कविता)
  श्री रामसजीवनसिंह — ६
- समुद्र पीकर भी ओठ सूखे हों
  डा० श्री विजयसिंह — १०
- सूक्ष्म शरीर की बात
  आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा — १३
- निजानुभूतियां
  श्री महेन्द्रनारायणसिंह — २६
- योग-माया
  एक योग साधक — २६
- नारी शक्ति का स्रोत
  श्रीमती सरिता भारद्वाज एम. ए. — ३२
- जनक का श्री शुकदेवजी को मोक्षका स्वरूप बतलाना
  श्री मानिकचन्द उमर वैश्य — ३७
- ऋषिकेश का योग-महोत्सव
  द्वारा आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा — ४२
- मुक्ति का उपाय और उसके विघ्न
  श्री हीरालाल शास्त्री — ४६

संयुक्त सम्पादक
'दिव्य'

वार्षिक मूल्य : १८ रुपया

सिद्ध योग

वर्ष १४
अङ्क ४

जौलाई
१९८१

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदं योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोग:' ॥

प्राप्य वरान्निबोधत

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

अर्थात्

हे मनुष्यो ! तुम जन्म-जन्मान्तर से अज्ञान निद्रा में सो रहे हो । अब तुम्हें परमात्मा की दया से यह दुर्लभ मनुष्य-शरीर मिला है । इसे पाकर अब एक क्षण भी प्रमाद में मत खोओ । शीघ्र सावधान हो जाओ । श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर उनके उपदेश द्वारा अपने कल्याण का मार्ग और परमात्मा का रहस्य समझ लो । परमात्मा का तत्त्व बड़ा गहन है, उसके स्वरूप का ज्ञान उसकी प्राप्ति का मार्ग महापुरुषों की सहायता और परमात्मा की कृपा के बिना वैसा ही दुस्तर है, जिस प्रकार छुरे की तेज धार पर चलना । ऐसे दुस्तर मार्ग से सुगमतापूर्वक पार होने का सरल उपाय वे अनुभवी महापुरुष ही बता सकते हैं, जो स्वयं इसे पार कर चुके हैं ।

हमारा विशेष लेख—

अन्तरंग योग का प्रथम सोपान—

धारणा

❀ योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग के विद्यार्थियों और साधकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि योग-पथ आठ भागों में विभाजित है। सभी यह जानते हैं कि योग के आठ अङ्गों में से—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार पांच बहिरंग और धारणा, ध्यान, समाधि तीन अन्तरंग भाग हैं। इन्हीं आठ भागों अथवा अङ्गों में श्रद्धा वीर्य वैराग्य आदि सद्गुणों का समावेश हो जाता है। यम और नियमों की परिधि में जीवन-उन्नयन के वे सभी गुण समाहित हो जाते हैं जिन्हें योगाङ्गों में बहिरंग कहकर पुकारा गया है। इन बहिरङ्गों के पूर्ण परिपालन के पश्चात् ही साधक धारणा, ध्यान और समाधि—इन तीन अन्तरङ्ग योगाङ्गों की सीमा में प्रवेश पा जाने का अधिकार प्राप्त कर पाता है। अतः इन तीन में धारणा को हम समाधि लाभ का प्रथम सोपान कहकर पुकार सकते हैं। योगदर्शन के अनुसार—देशबन्धश्चित्तस्य धारणा—अर्थात् देश में—देह के किसी अङ्ग-विशेष में अथवा किसी लक्ष्य-विशेष में चित्त का टिका देना धारणा नामक योग का छठा अंग कहा जाता है। यह लक्ष्य-विशेष देह का कोई अंग हो अथवा देह से बाहर का। इस लक्ष्य-विशेष में टिका हुआ मन एकाग्रता की ओर उन्मुख होना शुरू कर देता है। एकाग्रता प्राप्त करने के पश्चात् ही वह ध्यान के क्षेत्र में प्रवेश पा जाता है। जहां से वह 'ध्यानं निर्विषयं मनः' का प्रमाण पत्र यानी समाधि लाभ का अधिकारी बन जाता है। महामुनि पतञ्जलि के—

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

सूत्र की व्याख्या करते हुए भाष्यकार श्री व्यासदेव जी ने धारणा के स्थान अथवा लक्ष्य बिन्दुओं की चर्चा करते हुए कहा है—

नाभिचक्रे, हृदय पुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाग्रे, इत्येवमादिषु देशेषु, बाह्ये वा विषये, चित्तस्य वृत्ति मात्रेण बन्ध इति धारणा।

अर्थात् नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्ध्न-ज्योति, नासिका अग्र, जिह्वा अग्र इत्यादि स्थानों पर चित्त की वृत्ति मात्र को एकाग्र करना धारणा कहलाती है। वृत्ति मात्र कहने का अभिप्राय यह है कि इनको हम अपने मन

की श्रुति व कल्पनात्मक रूप से चिन्तन करें, जिस प्रकार से आंख रूप को प्रत्यक्ष देख लेती है और मन उस रूप की भावना किया करता है। देखे सुने हुए विषय को मन की भावना-रूप में चिन्तन करना ही श्रुति-बन्ध है। इसका अभिप्राय इस प्रकार समझ लेना चाहिए, जैसे हमने हृदय कमल में भगवान शिव के स्वरूप पर धारणा करना आरम्भ करें और कल्पना से उनके स्वरूप को हम हृदय में बैठा हुआ देखने लगें। यही हृदय-कमल की धारणा है। बार-बार कल्पना से भगवान शिव, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्री विष्णु या अन्य किसी भी इष्टदेव के स्वरूप का हृदय-कमल में चिन्तन करना यह हृत्पुण्डरीक में होने वाली धारणा है इसी प्रकार से मूर्धा ज्योति, नासिका अग्र, जिह्वाग्र, नाभि-चक्र आदि में धारणा की जाती है। धारणा करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह फल की इच्छा को छोड़ करके कर्म को करता रहे। सृष्टि नियमों के अनुसार किसी भी काम में मनुष्य शीघ्र परिणाम को प्राप्त नहीं कर सकता। भगवान पतञ्जलिदेव का आदेश है—

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः ।

अर्थात् किसी भी अभ्यास को हम करना शुरू करें तो उसके परिणाम की प्रतीक्षा के लिए उसका वर्षों तक लगातार करते रहना बहुत आवश्यक है। यह नहीं कि हम एक-दो दिन करके ही उसके परिणाम पर नजर डालने लगें। काफी लम्बे समय तक उस अभ्यास को करना चाहिए और लगातार करते रहना चाहिए अर्थात् इस नियम में कोई विघ्न नहीं आने पावे। आज कर लिया कल फिर छूट गया, फिर दो चार रोज करके फिर कुछ समय के लिए छूट गया। इस प्रकार का अभ्यास सफलता के उच्चतम स्तर पर नहीं ले जा सकता। उसके साथ-साथ एक बात और आवश्यक है कि हम श्री गुरुदेव के वचन पर विश्वास करके उन अभ्यास को करें जिसमें हमारी श्रद्धा परिपूर्ण रूपेण हो। हमने किसी मन्त्र का जाप शुरू किया और उसमें हमारी आस्था न हुई तो उसका भी परिणाम अच्छा श्रेयस्कर नहीं हो सकता। वैसे शास्त्रीय नियम 'अकर्णात् कर्णम् श्रेयः' के अनुसार न करने से कुछ करना ही अच्छा है, इस बात को विचार में रखते हुए जो कुछ भी किया जाय, कुछ न कुछ भले के लिए तो होता ही है, किन्तु यदि हम उसके उत्तम और अन्तिम निष्कर्ष को देखना चाहते हैं तो उपरोक्त तीनों नियमों का पालन करना हमारे लिए बहुत ही आवश्यक है। इसलिए धारणा को भी परिपक्व करने के लिये हमें कम से कम तीन साल तक एक

विषय पर ही परिपक्व मन लगाना चाहिए। तीन साल तक यदि मन्दाधिकारी भी उपरोक्त सूत्र के अनुसार धारणा का अभ्यास करेगा तो उसका भी मनोबल अवश्य बढ़ेगा ही बढ़ेगा। धारणा के अभ्यास से मन में विचार करने की उच्च स्तर की योग्यता प्रकट हो जाती है और वह एकाग्रता की ओर चलने लगता है। भगवान् पतञ्जलि देव ने योग दर्शन में कहा है:—

धारणा सु योग्यता मनसः।

अर्थात् धारणा करने पर मनन की योग्यता बढ़ती है। मन में बल का विकास होता है और वह सब कुछ करने की ताकत वाला बन जाता है। जो व्यक्ति दो या तीन साल तक लगातार प्रातः व सायंकाल २-२ घण्टे अपने ध्येय विषय की धारणा करके उसको वृत्ति निरोध से एकाग्रित करना चाहता है उसको ऐसा अनवरत अभ्यास करने पर अवश्य ही वह विषय उसके मन में प्रगट होने लगता है। मन को एकाग्र करने के कुछ इस प्रकार के नियम हैं कि जिनके पालन करने से हर मनुष्य का मन एकाग्र हो ही जाता है। यदि वह किसी अच्छे कण्ट्रोलर अर्थात् अच्छे नियन्त्रक गुरुदेव की आज्ञा में बंधकर अपने अभ्यास को नियमानुसार करता है तो इस प्रकार से लगातार किया हुआ यह धारणा-अभ्यास स्वतः ही ध्यान के रूप में बदल जाया करता है।

धारणा का सतत और सम्यक् अभ्यास मन को एकाग्रता की ओर ही उन्मुख नहीं करता किन्तु उसे शक्ति सम्पन्न भी बना देता है। मन के शक्ति सम्पन्न होने से ही साधक समाधि-लाभ की पात्रता प्राप्त कर पाता है। समाधि लाभ का अर्थ होता है परमात्म-तत्व का साक्षात्कार करना। शास्त्रीय सूक्ति है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो:।

अर्थात् बलहीन विशेष रूप से मन के दुर्बल पुरुष को आत्म-तत्व या परमात्म तत्व की प्राप्ति नहीं होती। वेदों में इसीलिए मन को शक्ति सम्पन्न और शिव-संकल्पमय बनाने के लिए अनेक प्रकार से प्रार्थना की गई है। लोक में यह कहावत प्रचलित है—मन के हारे हार है मन के जीते जीत। जिसका मन मर जाता है उसका जीवन भी प्रायः मर जाता है। विश्व विख्यात महाभारत के युद्ध में अर्जुन को युद्ध-भूमि से पलायन करके—जाने के कुभाव का कारण उसका दुर्बल बना हुआ मन ही तो था जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने गीतोपदेश देकर मानसिक दृष्टि से शक्ति सम्पन्न बनाकर श्रेय का भागी बनाया था। अतः मनको शक्तिशाली बनाना लौकिक और पारलौकिक लाभ लेने के अति आवश्यक है। धारणा का निरन्तर दीर्घ-कालीन अभ्यास ही मन की इस शक्ति का अजस्र स्रोत हो सकता है।अतः प्रत्येक साधक को धारणा के महत्व को स्वीकार करते हुए उसके अभ्यास को निरन्तर बढ़ाना चाहिए।

पूर्व प्रकाशित से आगे—

योग-चिकित्सा

✽ श्री गिरीशदेव वर्मा

अब हम कुछ ऐसे रोगों का वर्णन करेंगे जो शरीर के भीतरी अंगों में जैसे यकृत, प्लीहा, गुर्दे, हृदय, फेफड़े आदि में हो जाते हैं तथा उनकी चिकित्सा में नेति, बस्ति आदि क्रियायें पूर्णतया लाभ नहीं करती हैं। उनकी चिकित्सा के लिये कुछ विशेष आसन व प्राणायाम की क्रियायें करनी पड़ती हैं।

आसनों में शीर्षासन की महिमा बहुत गाई गई है और इसके बहुत लाभ बताये गये हैं। किन्तु मेरा तथा अन्य अभ्यासियों का अनुभव है कि आज के युग में इस आसन को करने से बजाय लाभ के हानि ही होती है। आज के वातावरण को दूषित जल व वायु ने गन्दा कर रखा है। खाने पीने की वस्तु में भी शुद्ध नहीं मिलती है और मनुष्य का जीवन बहुत कृत्रिम हो गया है। ऐसे समय में शीर्षासन का अभ्यास लाभ नहीं करता है, अतः मेरी राय में यदि इस आसन को न किया जावे तो ज्यादा अच्छा है।

शीर्षासन के बाद सर्वांगासन का नाम आता है। इस आसन से शरीर के सारे अंग-प्रत्यंग प्रभावित होते हैं। विशेष कर इस आसन से गले में स्थित थोराइड व पैरा थोराइड ग्रन्थियों पर प्रभाव पड़ता है। चूंकि यह ग्रन्थियां सारे शरीर का संचालन करती हैं, अतः इसके स्वस्थ होने पर सारे शरीर के अंग सुचारू रूप से काम करते हैं। इसीलिए इस आसन का नाम सर्वांगासन है। इस आसन से क्या लाभ होता है और कौन-कौन बीमारियां दूर हो सकती हैं, इसका वर्णन हम आगे करेंगे।

चूंकि सर्वांगासन में भी शरीर उल्टा हो जाता है अतः इसको करने में कुछ सावधानी बर्तनी है। मुख्यत इसके निम्नलिखित प्रतिबन्ध (Limitations) हैं।

(१) कुछ लोगों के कान में दर्द रहता है अथवा कान बहा करता है। ऐसे रोगी यदि सर्वांगासन करेंगे तो उनकी बीमारी बढ़ जायगी। क्योंकि उलटा होने पर खून का दबाव कान के अन्दरूनी अङ्गों पर विशेष रूप से पड़ता है और वहां सूजन बढ़ जाती है। ऐसे व्यक्तियों को पहले कान का इलाज करना चाहिये और उसके बाद किसी योगी की सलाह लेकर सर्वांगासन का अभ्यास शुरू

करना चाहिये।

(२) किन्हीं मनुष्यों की आंख की नसें कमजोर होती हैं अथवा उन्हें आंख के अन्य कुछ कष्ट रहते हैं। ऐसे मनुष्य जब सर्वांगासन करने लगते हैं तो रक्त का जमाव आंखों में बढ़ जाता है, और नसें व पुतलियां और कमजोर हो जाती हैं। ऐसे व्यक्ति सर्वांगासन करने का मोह ही त्याग देवें।

(३) कुछ लोगों के हृदय कमजोर होते हैं या उन्हें कभी हृदय रोग हो चुका होता है। यदि रक्त का दबाब भी नार्मल नहीं है तो मनुष्य हृदय का रोगी माना जायगा। ऐसे मनुष्य यदि सर्वांगासन करेंगे तो उनके हृदय व फेफड़ों पर भारी दबाब पड़ेगा और हृदय कमजोर होता जायगा।

(४) कुछ लोग पित्त प्रकृति के होते हैं। उनके शरीर में पित्त अधिक बनता है। ऐसे मनुष्यों को सर्वांगासन प्रातः काल नहीं करना चाहिये। उनके लिये इस आसन को करने के लिये शाम का समय ज्यादा ठीक है। यदि किन्हीं कारणों से उन्हें प्रातः ही आसन करने का समय मिलता हो तो उन्हें चाहिये कि पहले वे आधा कप दूध पी लें और उसके आध घण्टे बाद यह आसन करें तो कोई दिक्कत न होगी।

बात यह है कि जब पेट में पाचन क्रिया चल रही होती है तब पित्ताशय से पित्त निकल कर पाचन क्रिया में सहायता देता है किन्तु यदि पेट व छोटी आंत खाली हों जैसा कि प्रातः काल हुआ करता है तब पेट को पित्त की आवश्यकता नहीं होती है। सर्वांगासन में उलटा होने पर यकृत का दबाव पित्ताशय पर पड़ता है और उसका मुँह खुल जाता है और थोड़ा पित्त पेट में आता है। खाली पेट में पित्त पहुँच जाने पर पित्त प्रकोप बढ़ जाता है। मतली होने लगती है। सिर घूमने लगता है और भूख मर जाती है। अतः खाली पेट सर्वांगासन करना ठीक नहीं है। कुछ दूध पीकर या कोई ठोस चीज खाकर आसन करने से पित्ताशय का मुँह नहीं खुलता है और पेट में पित्त आने का भय नहीं रहता है। सांय काल को पेट पूर्णतया खाली नहीं रहता और उस समय सर्वांगासन करने में कोई उपद्रव नहीं होता।

(५) कुछ लोगों के मलाशय में बड़ी खुश्की होती है और उन्हें कड़ा पाखाना होता है और देर तक शौचालय में बैठना पड़ता है। ऐसे मनुष्य कब्ज के रोगी होते हैं। वे आवश्यकता से कम जल पीते हैं। वह जो भी थोड़ा बहुत जल पीते हैं वह जल शरीर के अन्य स्थानों पर खप जाता है और नतीजा यह होता है कि उनका मल सूख जाता है। कुछ लोगों में चर्बी की मात्रा अधिक होती है और

पानी की मात्रा चर्बी सोख लेती है। कुछ लोगों के गुर्दों में ऐसी खराबी आ जाती है कि वे ज्यादा पानी छानने लगते हैं और ज्यादा पेशाब होने लगता है। ऐसे लोगों में भी पानी की कमी से मल सूख जाता है। ऐसे लोग यदि सर्वांगासन करेंगे तो उन्हें लाभ के बजाय हानि ही अधिक होगी।

जिन लोगों में पानी की कमी हो और कड़ा मल होता हो तो उन्हें चाहिये कि प्रातः उषः पान किया करें। रात को किसी तांबे के बर्तन में पानी रख दिया करें और प्रातः उठ-कर मुँह धोकर कम से कम आधा सेर पानी पी जाया करें। ऐसा करने से मल का कड़ापन मिट जायेगा और उसके बाद सर्वांगासन करें। यदि उषः पान से मल का कड़ापन न मिटे तो रात को सोते समय एक गिलास पानी पीकर लेट जाना चाहिये। हर मनुष्य को चौबीस घण्टे में तीन सेर से लेकर पांच सेर तक पानी पीने का नियम बनाना चाहिये।

अन्त में एक बात और कहनी है कि शारी-रिक व्यायामों में व यौगिक आसनों में अन्तर होता है। तेजी से करने वाले कसरतों से स्थूल शरीर विकसित होता है और आसनों से स्थूल और सूक्ष्म शरीर दोनों निरोग बनता है। जो लोग दोनों प्रकार के व्यायाम करते हों, उन्हें चाहिये कि पहले शारीरिक व्यायाम करें और फिर पन्द्रह मिनट तक शवासन में लेट कर आराम करें और उसके बाद यौगिक आसन करें। यदि दोनों प्रकार के व्यायाम साथ-साथ किये गये तो कालान्तर में शरीर को हानि उठानी पड़ेगी।

अब हम सर्वांगासन को भली प्रकार करने का ढंग और उसके लाभों का वर्णन करेंगे।

विधि—

जमीन या तख्त पर एक मोटी दरी या कम्बल बिछावें, उसके ऊपर एक सफेद चादर डालें। बिस्तर इतना लम्बा हो कि उस पर आराम से लेटा जा सके। अब उस पर चित लेट जावें। दोनों पैरों को चिपका कर दोनों हाथ बगल में रखें तथा हथेलियों का मुँह जमीन की ओर हो। अब सांस छाती में भर पैरों को सीधा रखते हुये कमर के जोड़ के पास से धीरे-धीरे उठा कर जमीन से ३० अंश का कोण बनाइये और पांच गिनती में इस स्थिति में रहकर श्वांस बाहर कर दीजिये।

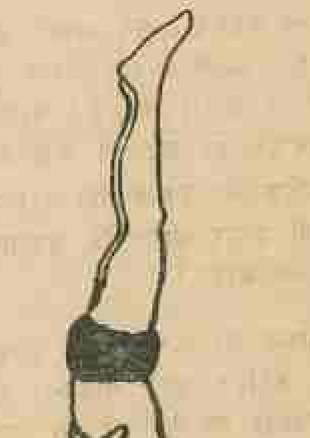

सर्वांगासन

अब फिर सांस लेकर अपने पैरों को और उठाइये और ६० अंश का कोण बनाइये। यहां भी रुक कर सांस बदल लीजिये। फिर सांस भर कर पैरों को इतना उठाइये कि ९० अंश का कोण बन जाय। यहां भी रुक कर सांस बदल लीजिये।

जब हाथ और कुहनियां जो बिल्कुल निष्क्रिय पड़ी हुई थीं, उनका काम होगा। बाहुओं पर भार देकर नितम्बों के पास से धड़ को सीधे ऊपर ले जाइये, जिसमें सीना ठुड्डी को स्पर्श करने लगे। इसी कुहनियों के पास से हाथों को मोड़कर उससे धड़ को ऊपर की ओर इतना धकेलिये कि ठुड्डी कण्ठ कूप में बैठ जावें अर्थात् जालन्धर बन्ध लग जावें। धड़ को टेढ़ा होने से रोकने के लिये हाथों को अच्छी तरह जमाये रखिये। दृष्टि पांव के अँगूठों की तरफ हो। यही सर्वांगासन की पूर्ण स्थिति है। चित्र को ध्यानपूर्वक देखें। सर्वांगासन की स्थिति में सांस को स्वाभाविक रूप से आने जाने दें। इस आसन को एक मिनट से शुरू करके अभ्यास बढ़ाते हुये २० मिनट तक ले जाना चाहिये। आसन कर लेने के बाद पैरों को झटके से नहीं गिराना चाहिये, बल्कि जिस प्रकार धीरे-धीरे उठाया गया है उसी प्रकार धीरे-धीरे शवासन की स्थिति में लौट आइये।

इस आसन को करते समय पुरुषों को लंगोट या कोपीन जरूर पहिनना चाहिये और महिलाओं को सलवार या चूड़ीदार पायजामा पहिनना चाहिये।

सर्वांगासन का पूरा लाभ उठाने के लिये इसका पूरक आसन करना चाहिये। इस पूरक आसन का नाम है -मत्स्यासन। सर्वांगासन के तुरन्त बाद मत्स्यासन को करना चाहिए। सर्वांगासन में गर्दन आगे की तरफ झुकाई जाती है और मत्स्यासन में गर्दन पीछे की ओर झुकाई जाती है।

मत्स्यासन

विधि—शवासन के बाद पद्मासन लगाकर बैठ जाइए और पीठ के बल लेट जाइये। सारा भार कुहनियों पर रखकर सिर और धड़ को जितना हो सके धनुषाकार ऊपर उठाइये और पीछे देखने का प्रयत्न कीजिये। ठीक प्रकार से मत्स्यासन करने पर सिर में चोटी का स्थान जमीन से छूता रहेगा और पीठ उठी व तनी रहेगी। इसके बाद दाहिने हाथ से बायें और बायें हाथ से दाहिने पैर के अँगूठों को पकड़ कर इस प्रकार से करें कि कुहनियां जमीन से ऊपर चित्र के अनुसार हो जावें। इस आसन में गर्दन की सारी नसें तन जाती हैं और वहां के अङ्गों पर विशेष जोर पड़ता है। जो लोग मोटापे के कारण या नाड़ियों के कड़ेपन के कारण पद्मासन न लगा सकते हों वे साधारण पल्थी लगाकर मत्स्यासन करें। इस आसन को सर्वांगासन के चौथाई समय तक ही करते हैं। अर्थात् यदि सर्वांगासन चार मिनट किया जावे तो मत्स्यासन एक मिनट तक किया जावे। इस आसन को करने के बाद शवासन में आजावें।

इन दोनों आसनों को करने से थोराइड ग्रन्थियों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इन ग्रन्थियों की स्वस्थता का मतलब है सारे शरीर की स्वस्थता। यह ग्रन्थियां क्या हैं? और कहां हैं? और क्या काम करती हैं? तथा इन आसनों से इन ग्रन्थियों पर कैसे प्रभाव पड़ता है। इसका वर्णन हम आगे करेंगे। ✡

अन्तर्मुखी

श्री रामसजीवनसिंह

शक्ति की क्षीणता
बढ़ती हुई दीनता
बहिर्मुखी के लक्षण
जीवन के एक - एक क्षण
बना देते हैं कष्टमय
हर क्षेत्र में पराजय !
किन्तु अन्तर्मुखी
तैरता है आनन्द के सागर में
करता है—
दूर दर्शन
दूर श्रवण
बढ़ती है प्राण शक्ति
छूता है चांद और तारे
सागर की थाह लेता हुआ
रहता है किनारे
भूतजयी बनकर
असम्भव को सम्भव कर
आकाश गमन
तथा काया निर्माण तक की
योग्यता हासिल कर लेता है

卐 समुद्र पीकर भी ओठ सूखे हों 卐

❀ डा. श्री विजयसिंह

समाज में सम्मृद्धि का जो दिखावा नहीं करते। शक्तिशाली होकर भी जो विनयानवत व्यवहार करते हैं। अपने से दुर्बल शत्रु के प्रति भी जो क्षमाशील होते हैं जो साधन सम्पन्न हैं, जो गूढ़ आध्यात्मिक शक्ति से विभूषित हैं। परन्तु युक्ति पूर्वक सहज मानव की तरह व्यवहार कुशल हैं। जिन्हें निकटस्थ व्यक्ति भी ठीक-ठीक नहीं जान पाता। जानता उतना ही है जितना उसका मनोभाव हुआ करता है। ऐसे विभूतिमान महापुरुषों का जीवन आदर्श "समुद्र पीकर भी ओठ सूखे हों" की कहावत चरितार्थ करता है।

महायोगी अगस्त जिन्होंने दयावश होकर एक टिटीहरी के अण्डे की खोज में समुद्र को दण्डित करने हेतु उसका पान कर लिया था। जिन्होंने अभिमानी विन्ध्य पर्वत को सर्वदा के लिए लंघनीय बना दिया। जिनके यौगिक तेज की बड़ी बड़ी गाथायें अगस्त पुराण में वर्णित है। कहा जाता है कि सामान्य जीवन में उनका शरीर अत्यन्त बौना था। देखकर कोई भी उनकी अभ्यान्तरिक शक्ति का भला कैसे अनुमान कर सकता होगा। जिनके बारे में प्रसिद्ध है कि एक बार गोपद से उत्पन्न छोटे से गड्ढे के स्थित जल में डूबने-उतराने लगे थे। शायद यह कथन इनकी इन दो तलों पर विरोधाभास से ही उत्पन्न हो गया हो।

प्रत्येक परमसिद्ध सद्गुरुदेवों का जीवन अवश्य ही इस कथन को चरितार्थ करता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से स्पष्टतः कहा है कि– अर्जुन, आत्मदर्शन अथवा तत्वों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये, तत्वदर्शी आत्म ज्ञानी प्रज्ञा चक्षु सम्पन्न महापुरुषों के चरण कमलों में समर्पण करने से, उनकी सेवा करने से तथा उन्हें प्रसन्न करके प्रश्न करने से उपलब्ध होता है। गीता में अर्जुन द्वारा आत्मोपलब्ध जनों के लोक आचरण के बारे में पूछे जाने पर कि—ऐसे जन कैसे बोलते हैं इनका उठना बैठना किस प्रकार होता है ? भगवान योग योगेश्वर श्रीकृष्ण चन्द्र ने कहा– आत्मज्ञानी की हर क्रिया अनुद्वेगकारी तथा समत्व बुद्धि से कीया जाया करती है। ऐसे व्यक्तियों को मित्र अथवा शत्रु दोनों में समान बुद्धि हुआ करता है आदि आदि। यहां ऐसे ही एक

योगिराज ज्ञानावतार श्री युक्तेश्वर जी के लोक वृत्तियों का विवरण "योगी की आत्म-कथा" से दिया जा रहा है।

श्री युक्तेश्वर जी का स्वाभाविक मौन उनकी गहरी ईश्वरानुभूति का ही परिणाम था। आत्मसाक्षात्कार-विहीन गुरु नाम आडम्बरी जिन- अलौकिक प्रदर्शनों में दिन रात व्यस्त रहते हैं, ऐसे क्षुद्र प्रदर्शनों के लिये महापुरुषों के पास कोई समय नहीं हुआ करता। कहावत है—"अधगर गगरी छलकत जाय, भरी गगरिया चुपके जाय" श्री युक्तेश्वर जी यद्यपि कि मर्त्य मनुष्य के रूप में ही जन्मे थे परन्तु गुरुकृपा तथा अपने पुरुषार्थ से वे देश व काल के नियन्ता के साथ एकात्म स्थापित कर चुके थे। उनका कहना था— नर के नारायणत्व प्राप्त करने के मार्ग में कोई दुरूह बाधा नहीं है। आध्यात्म की प्रेरणा तथा उत्साह का अभाव ही एक मात्र बाधा है। परमहंस योगानन्द जी ने अपने श्री गुरुदेव के चरण कमलों के संस्मरण में लिखा है कि— श्री युक्तेश्वर जी के पुण्य चरणों का स्पर्श करते समय मुझे सदा रोमांच हो आता था। गुरु के पुनीत स्पर्श से शिष्य एक आध्यात्मिक शक्ति से ओत प्रोत हो उठता है। एक सूक्ष्म शक्ति प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। शिष्य के मस्तिष्क में विद्यमान अवांछनीय संस्कार ऐसे स्पर्श से पवित्र हो जाते हैं। सांसारिक प्रवृत्तियाँ भी मंगलमयी हो जाती हैं। थोड़ी देर के लिये ही सही, माया का रहस्यमय पर्दा उठ जाता है और उसे परम अनुभूति की आनन्दमयी झांकी मिल जाती है।

श्री युक्तेश्वर जी का भी अपना निजानुभव था— जब कभी वे लाहड़ी महाशय के पास होते। चाहे वे मौन होते अथवा विशुद्ध धार्मिक विषयों से अलग किसी विषय पर वार्ता करते, तब भी उन्हें ज्ञात होता कि उनके श्री गुरुदेव ने उनके अन्दर एक अनिर्वचनीय अगाध ज्ञान का संचार कर दिया है। श्री युक्तेश्वर जी अपने शिष्यों को सदैव 'क्रिया-योग' के अभ्यास की आवश्यकता का स्मरण कराते रहते थे। कभी-कभी जब कोई नया शिष्य योगाभ्यास की अपनी पात्रता के विषय में संदेह व्यक्त करता, तब श्री युक्तेश्वर जी उसे इन शब्दों में आश्वासन देते: अतीत की बात एक दम भूल जाओ। सभी लोगों का व्यतीत जीवन किसी न किसी लज्जास्पद कार्य के अन्धकार से आच्छादित है। जब तक मनुष्य आत्मसाक्षात्कार में दृढ़ नहीं हो जाता, उसको अपनी सभी प्रवृत्तियों पर भरोसा नहीं करना चाहिए। वे कहते—यदि अब से भी तुम आध्यात्मिक उन्नति की चेष्टा शुरू कर दो, तो भविष्य में सब कुछ सुधर जायेगा।

आश्रमवासी अपने गुरु के प्रति प्रेम और श्रद्धा रखते थे। श्री युक्तेश्वर जी के हाथ की

एक हल्की ताली के संकेत पर ही सारे शिष्य उनके पास उत्सुकता से दौड़ पड़ते। जब कभी वे अन्तर्मुख रहते, तब कोई भी उनसे बोलने का साहस न करता, परन्तु जब वे उल्लसित होकर हँस पड़ते तब छोटे बच्चे भी उन्हें अपना समझकर उस हँसी में अपना योगदान करते। श्री युक्तेश्वर जी शायद ही कभी किसी से कोई व्यक्तिगत काम करने का अनुरोध करते। वे अपने स्त्री और पुरुष शिष्यों से अपनी संतान के समान खुलकर मिलते थे। उनको आत्मा की दृष्टि से एक मानते हुये वे उनके बीच कभी भेद-भाव या पक्षपात का बर्ताव नहीं करते थे। उनका कथन था-सो जाने के बाद क्या तुम्हें ज्ञान रहता है कि तुम स्त्री हो अथवा पुरुष हो। आत्मा ईश्वर का निर्विकार शाश्वत रूप है।

श्री युक्तेश्वर जी बातचीत में अत्यन्त निष्णात थे। उनकी वाग्विदग्धता विनोदी वृत्ति और मुक्त हास्य से हर चर्चा सरल और सजीव हो उठती थी। वे प्रायः गम्भीर रहते थे, पर उदास कभी रहते थे। वे बाइबिल का उद्धरण देते हुये कहा करते थे— ईश्वर को पाने के लिये मनुष्य को अपना मुख विकृत बनाने की आवश्यकता नहीं। यह याद रक्खो कि ईश्वर प्राप्ति का अर्थ होता है, सभी दुःखों का विनाश। श्री युक्तेश्वर जी शिष्यों को कहते--ज्ञान को आंखों से नहीं, परन्तु अपने अस्तित्व के अणु-परमाणुओं द्वारा आत्मसात किया जा सकता है। जब सत्य के प्रति तुम्हारा विश्वास केवल मन तक ही सीमित न रहकर तुम्हारी समग्र सत्ता में व्याप्त हो जावेगा। तब तुम दूसरों को भी उसका अर्थ-बोध करा सकोगे।

खूब ठट्ठा मार कर दिन में तीन बार हँसो और डाक्टर को दूर रखो। हँसने से आयु में वृद्धि होती है, हँसने से चेहरे की समस्त मांस पेशियों का अच्छा व्यायाम हो जाता है जिससे चेहरा सुन्दर तथा भर आता है। -श्री गुरुदेव

❀ रूपं रूपं ❀

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १० ॥

जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और बाहर भी है ॥ १० ॥

—कठोपनिषद्

सूक्ष्म शरीर की बात

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम. ए. एम.एड.

हुआ व्यक्ति स्थूल शरीर से ही परिचित है। स्थूल शरीर का परिचय भी अधूरा है। हमारे स्थूल शरीर के बाहर अनेकों स्थूल पदार्थ हैं उनसे शरीर का स्थूल सम्बन्ध होता रहता है। रेल, मोटर, हवाई जहाज में बैठकर हम यात्रा करते हैं, कुर्सी मेज पलंग आदि को शरीर के काम लाते हैं। यह शरीर रेल, हवाई जहाज, कुर्सी मेज तथा पलंग की अपेक्षा सूक्ष्म है। इस स्थूल शरीर के भीतर कई और शरीर लिये हम घूम रहे हैं। योगियों ने इन शरीरों को आत्मा का क्षेत्र कहा है—

इदं शरीरं कौन्तेयक्षेत्रमिति अभिधीयते।
—गीता १३/१

इस क्षेत्र के अन्दर बाहर क्षेत्रज्ञ पुरुष व्याप्त है जिस प्रकार आकाश घर और घर के बाहर व्याप्त होता है। स्थूल शरीर के अन्दर सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर के अन्दर कारण शरीर तथा कारण शरीर के अन्दर महाकारण या तुरीय शरीर है। 'शीर्यते इति शरीरम्।' जिसमें वृद्धि और क्षय आदि—परिणाम तथा रूपान्तरण सतत् होता रहे, उसे शरीर कहते हैं। शरीर ही भोगायतन होता है। हम शुभ-अशुभ जो भी कर्म करते हैं उनसे सुख और दुःखरूपी फल मिलता है। प्रारब्ध का भोग शरीर के द्वारा होता है। आधि-व्याधियाँ शरीर में ही प्रकट होकर सुख और दुःख दिया करती है। कर्मों के संस्कार शरीर रूपी खेत में ही फलते-फूलते हैं। सन्त तुलसी कहते हैं—

तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान।
पाप-पुण्य दोऊ बीज हैं, बुवे सो लुने निदान।

कर्मों की खेती शरीर रूपी खेत में होती है। जब तक हम स्थूल शरीर में रहते हैं, सभी कर्मों का भोग स्थूल रूप में बहुत काल तक भोगना पड़ता है। स्थूल शरीर के भीतर उतरकर सूक्ष्म शरीर के धरातल पर रहने की क्षमता आ जाने पर कर्म-प्रवाह जन्य भोग सूक्ष्म शरीर से सूक्ष्म रूप में भोग लिया जाता है। सूक्ष्म से भी परे कारण शरीर है। कारण शरीर में पहुँचने पर बुद्धियोग की प्राप्ति हो जाती है। कारण से भी परे महाकारण शरीर है जो व्याप्त चेतन सत्ता के साथ एक रस रहता है।

स्थूल शरीर अन्नमयकोश से निर्मित है। मनोमयकोश से सूक्ष्म शरीर प्राणमयकोश से कारण शरीर तथा विज्ञानमयकोश से महाकारण शरीर है। ये सभी शरीर देखे जा सकते हैं। जिस प्रकार स्थूल शरीर से शक्ति के बड़े-बड़े कार्य किये जा सकते हैं उससे भी बड़े-बड़े कार्य सूक्ष्म शरीर द्वारा किये जा सकते हैं। जब हम सो जाते हैं तो स्वप्न में विचित्र-विचित्र अनुभव होते हैं। हमारा शरीर चारपाई पर पड़ा रहता है किन्तु हम दूसरे स्थान पर पहुँचकर दूसरे शरीर से उड़ते हैं, भागते-दौड़ते हैं तथा नाना प्रकार के कार्य करते हैं। ध्यान परायण योगी अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर सूक्ष्म शरीर के माध्यम से चित्त-निर्माण करते हैं तथा दूसरे व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित होकर उसे सहायता दिया करते हैं। सिद्ध लोग सूक्ष्म शरीर से आकाश मार्ग में घूमा करते हैं तथा दिव्य लोकों में गमन करते हैं।

महात्मा ईसा फांसी पर लटकाये जाने के बाद सूक्ष्म शरीर से शिष्यों के समक्ष उपस्थित होकर उन्हें उपदेश देने लगे थे। तीसरे दिन वे सूक्ष्म शरीर के द्वारा कब्र से बाहर आये। सूक्ष्म शरीर दीवारों के बीच में से गुजर सकता है। सूक्ष्म शरीर एक दम प्रकट होकर गायब हो सकता है। सूक्ष्म शरीर तेजोमय होता है। मरने के बाद स्थूल शरीर पड़ा रहता है। उसमें से सूक्ष्म शरीर निकल जाता है और किसी स्थूल अधिष्ठान की तलाश में कुछ दिन इधर-उधर भटकता है। यदि स्थूल शरीर के द्वारा अपना मार्ग ठीक कर लिया है। योग-विधि से प्राण-त्याग किये हैं तो प्राण-त्याग के बाद आगे के कर्मों के भोग के लिए पुनः नया स्थूल शरीर मिल जाता है। जिनकी मृत्यु किसी संवेग के कारण या दुर्घटना से होती है अथवा आत्म-हत्या करते हैं वे भूत-प्रेत के रूप में उस समय तक घूमते रहते हैं जब तक कोई इष्ट जन उनको पिण्ड-दान तथा श्राद्ध तर्पण आदि से तृप्त कर उनको मार्ग तैयार नहीं करता। सूक्ष्म शरीर में ज्ञान के अभाव में कुछ करने की सामर्थ्य नहीं होती। क्रिया करने के लिए उसे स्थूल शरीर का आश्रय लेना पड़ता है। कर्म करने के लिए स्थूल शरीर का कर्मेन्द्रियों की आवश्यकता है। प्राचीन युनानके धार्मिक संस्कारों में ऐसी विधियों का उल्लेख है जिनके द्वारा सूक्ष्म शरीर को भौतिक शरीर से बाहार निकाल कर, उससे अनेकों कार्य करवाये जा सकते हैं। मनोविश्लेषण शास्त्र के जक सिगमण्ड फाइड के शिष्य कार्लजुंग ने Memoris, Dreams, Reflections नामक अपनी पुस्तक में १९४४ सन् के अपने अनुभव का उल्लेख किया है। एक बार उन्हें दिल का दौरा पड़ा। उस अवस्था में उन्हें अनुभव

हुआ कि वे अन्तरिक्ष में लटके हुए जेरुसलम नगर को देख रहे हैं। फिर अनुभव हुआ कि उनका सूक्ष्म शरीर जगमगाते एक पूजा-गृह में प्रवेश कर गया जहाँ पूर्वजन्मों के अपने सभी शरीरों से भेंट हुई। तभी डाक्टर के सूक्ष्म शरीर की काली छाया मंडराती हुई वहाँ आ पहुँची और उन्हें आदेश दिया कि अपने भौतिक स्थूल शरीर में लौट आओ। उनके आदेश का पालन करते ही जुंग को लगा कि उनकी स्वतन्त्रता छिन गई और वे पुन: अपने स्थूल शरीर में कैद हो गये तथा उनकी शक्ति भी सीमित हो गई। इस अनुभव ने जुङ्ग को पुनर्जन्म तथा अर्जित पूर्वजन्म के संस्कारों की उपयोगिता के सिद्धान्तों पर विश्वास करने को विवश कर दिया था।

साक्षीभाव या दृष्टाभाव की साधना में योगीजन अपने सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से बाहर निकाल कर स्थूल शरीर को देखते रहते हैं। जैसे तकिये के खोल को तकिये से अलग कर धोते हैं, सुखाते हैं और फिर तकिये पर चढ़ा लेते हैं वैसे ही योगी सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से अलग कर स्थूल शरीर के संस्कार भोगों को तटस्थवृत्ति से देखते रहते हैं जिससे उन्हें शरीर-जन्य सुख-दुःख नहीं होता। इस अभ्यास से अपने शरीर की गंभीर व्याधियां स्वयं ठीक की जा सकती हैं। सूक्ष्म शरीर में आपरेशन भी किया जा सकता है। उस आपरेशन का प्रभाव स्थूल शरीर पर तुरन्त होगा और पीड़ा भी नहीं होगी। स्थूल शरीर के धरातल से सूक्ष्म शरीर के धरातल पर रोग लेकर उन्हें दृष्टाभाव से देखकर शीघ्र ही रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। आदतों, रूपरंग तथा स्वभाव का परिवर्तन सूक्ष्म शरीर की साधना द्वारा किया जा सकता है। मन्त्रजप से सूक्ष्म शरीर में स्पन्दन होता है तथा तैजस परमाणु सक्रिय होने लगते हैं। उससे सूक्ष्म शरीर के साथ सीधा सम्पर्क हो जाता है। धारणा और ध्यान में तन्मात्राओं के साथ सम्पर्क होने पर सूक्ष्म-जगत में प्रवेश करने की योग्यता प्राप्त हो जाती है जिससे सूक्ष्म शरीर का विज्ञान समझा जा सकता है।

हमारा मन जब तक पदार्थ चेतना के साथ जुड़ा रहता है तब तक स्थूल बन्धन में होता है। पदार्थ चेतना से मुक्त होकर सूक्ष्म चेतना के साथ जिसे प्राणिक चेतना कहते है- मन संयुक्त होता है तब उसका स्थूल-बन्धन शिथिल हो जाता है। मन अवचेतन तथा अचेतन के साथ संयुक्त होकर चेतना से परिपूर्ण हो जाता है। चेतना का जितना अधिक विस्तार होता है, हम उतने ही अधिक शक्तिशाली होते हैं। चेतना की व्याप्त दशा का अनुभव ध्यान में होता है। या यों कहना चाहिए कि ध्यान द्वारा हम देश काल का

अतिक्रमण कर अनन्त चेतना के साथ जुड़ जाते हैं। प्राणिक चेतना जगतमें सभी पदार्थों में अधिक साम्यता तथा निकटता है। स्थूल चेतना में हम छोटे-छोटे दायरों में बँटे हुए हैं। योग-निद्रा, अन्तःमौन, शिथिलीकरण तथा प्राणायाम द्वारा हमारे स्थूल-बन्धन ढीले होते हैं। फिर हम अपने सूक्ष्म प्राणमय चैतन्य के साथ एकाग्रता रूपी ध्यान की क्रिया से जुड़ते हैं। आसनों के अभ्यास द्वारा भी मानसिक संवेगों, मनोवृत्तियों तथा चेतना के स्तरों में परिवर्तन आता है उससे स्वप्न, भय तथा स्नायविक रोगों में लाभ होता है किन्तु आसनों का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर की धारणाओं के साथ जुड़ता है तो फल शीघ्र दिखाई पड़ने लगता है। अतः आसन में धारणा का बड़ा महत्व है। आसनों का प्रभाव चक्रों पर भी पड़ता है। चक्रों की स्थिति सूक्ष्म शरीर में ही है। स्थूल शरीर की चीड़-फाड़ करने पर किसी शरीर शास्त्री को आज तक ये चक्र नहीं मिले इसलिए शरीर-रचना-शास्त्री चक्रों को कपोल-कल्पना समझते हैं।

सूक्ष्म शरीर में ही इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, चित्रावज्रा आदि नाड़ियां हैं तथा ब्रह्म, विष्णु तथा रौद्र ग्रन्थियां भी सूक्ष्म शरीर में है तथा सहस्रार के नीचे अमृत-कला तथा निर्वाण-कला (मृत्यु नाड़ी) नाम की नाड़ियाँ भी सूक्ष्म शरीर में हैं जिससे योगी अमरता की साधना करने में सफल होता है। सूक्ष्म शरीर में ही कुण्डलिनी, भुजंगाकार होकर बैठी है। बौद्धिक चेतना के माध्यम से कुण्डलिनी के रूप में आनन्दमय कोश में ऊर्जा का विस्फोट होता है। यह ऊर्जा का स्फोट स्थूल शरीर में असाधारण शक्तियों का जनक होता है। भौतिक शास्त्र (Physics) में कहा गया है कि देश और काल की मान्यता एक आयाम (Dimension) के बाद दूसरे आयाम पर बदल जाती है। मनुष्य का सौ वर्ष ब्रह्माजी के कुछ सेकिण्ड के बराबर है। एक आयाम से निकल कर दूसरे आयाम में पहुँच कर देश और काल तथा उनमें प्राप्त होने वाले कर्म-भोग सूक्ष्म होते जाते हैं। उदाहरण के लिए प्रारब्ध कर्म का कोई भोग बीस वर्ष के लिए उपस्थित हुआ है। यदि स्थूल शरीर से भोगना है तो बीस वर्ष में वह कर्म भोग पूरा होगा। वही कर्म-भोग मान लीजिये घातक बीमारी कैंसर के रूप में आया है। यदि उसे सूक्ष्म के आयाम पर पहुँचकर भोगा जाय तो बीस वर्ष का समय महीनों का समय हो जायगा और कुछ काल में उस भोग से छुटकारा हो जायगा। यदि उस सूक्ष्म से भी सूक्ष्म कारण शरीर के आयाम में पहुँचकर कर्मभोग को भोगा जाय तो वह स्थूल भोग भी बीज-भाव में बदल जायगा तथा उस भोग का

दीर्घकाल सूक्ष्म काल में बदल जायगा। वर्षों का भोगकाल कुछ घण्टों या सैकिण्डों में भोग लिया जायगा। ध्यान योग का विज्ञान योगी को सूक्ष्म आयामों में पहुँचकर कार्य करने की कला सिखाता है। समाधि-निष्ठ व्यक्ति जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को इसी जन्म में भोग कर मुक्त हो सकता है। क्योंकि आयाम बदलने से वस्तु का स्वरूप परिवर्तन तथा पदार्थ का शक्ति के रूप में रूपान्तरण करने का विज्ञान योगी जान लेता है। समाधि की अवस्था में देश और काल दोनों नष्ट हो जाते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान नष्ट हो जाते हैं निकट, दूर सब नष्ट हो जाते हैं मन, बुद्धि चित्त, अहंकार सब कुछ नष्ट हो जाते हैं। योगी का एक तत्व के साथ अभिन्न सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यही माया का हटना है। वेदान्त में देश-काल को कल्पित माना गया है। सब माया है। समाधि अवस्था में सूक्ष्मतम आयाम में पहुँचकर योगी सभी को अपने में लीन देखता है—

यो मां पश्यति सर्वत्र
सर्वं च मयि पश्यति।
—गीता

अपने को सब पदार्थों में और सब पदार्थों में अपने को युक्त देखने वाला योगी जीवन-मुक्त कहलाता है। उसे कुछ करना-धरना शेष नहीं रहता। वह बूंद से समुद्र ही बन जाता है।

प्रभा मण्डल—सूक्ष्म शरीर का ज्ञान प्रभा-मण्डल से होता है। प्रत्येक पदार्थ के चारों ओर एक अदृश्य सूक्ष्म प्रभा मण्डल (Aura) होता है। यह ज्योति-मण्डल उस व्यक्ति तथा पदार्थ की प्राणशक्ति का द्योतक है। जैन-दर्शन में इस प्रभा-मण्डल को —लेश्यायें कहा गया है। काली, लाल, नीली, पीली, सुनहरी तथा श्वेत लेश्यायें व्यक्तियों में पाई जाती हैं। तामसी गुणों वाले व्यक्ति के चारों ओर गहरी काली लेश्यायें पायी जाती हैं। रजोगुणी क्रूर व्यक्ति के चारों ओर लाल तथा नीली लेश्यायें होती हैं। शुद्ध सात्विक व्यक्ति के चारों ओर स्वर्णिम तथा श्वेत—प्रभा-मण्डल पाया जाता है। इन प्रभा-मण्डलों के द्वारा रोग की सूचना भी मिल जाती है तथा प्रभा-मण्डल का विज्ञान जानकर प्रतिकूल लेश्यायें (मन्त्रजप, ध्यान आदि उपायों से) उत्पन्न कर रोगों को ठीक किया जा सकता है। सन्तों में प्राणशक्ति सूक्ष्म तथा व्याप्त होती है अतः उनके तेजो-मण्डल स्वर्णिम एवं श्वेत होता है और दूसरों को प्रभावित करने वाला होता है। प्रभा-मण्डल के विस्तार के आधार पर जाना जा सकता है कि कौन संत कितने अधिकार वाला है। एक बार महा-

प्रभुजी हरिद्वार कुम्भ में पधारे थे। उनके साथ उनके कई योगी बालक भी थे। उनके एक लाड़ले बच्चे जो तुरीय स्थिति में रहा करते थे। उनका नाम योगिराज श्री मुलखराज जी महाराज था जिन्हें लाड़ में आनन्दकन्द श्री प्रभुजी 'राजे' कहा करते थे। एक दिन उन्होंने श्री प्रभुजी से पूछा—प्रभो! इस कुम्भ में कौन-कौन सिद्ध पुरुष आये हुए हैं? कृपया उनका दर्शन करा दीजिये। श्री प्रभुजी बोले—राजे! ध्यान में बैठकर देख ले। जिससे तेजोमण्डल जितने विस्तार वाला होगा वह उतना ही शक्ति सम्पन्न होगा। श्री प्रभुजी की बताई विधि से श्री मुलखराजजी महाराज ध्यान में बैठ गये और आज्ञाचक्र पर संयम कर सिद्धों के दर्शन करने लगे। कुछ सिद्धों का तेज मेले भर क्षेत्र में फैला था कुछ का तेज हरिद्वार भर में व्याप्त था और कुछ का अधिक व्याप्त था। सिद्धों के दर्शन करते-करते श्री मुलखराज जी महाराज की इच्छा हुई कि अपने गुरुदेव श्री प्रभुजी का प्रभा-मण्डल का भी पता लगाया जाय। उन्होंने श्री प्रभुजी का तेज देखना प्रारम्भ किया। उनका तेज दिग्-दिगन्त तक फैला हुआ था। कहीं ओर-छोर ही नहीं नजर आ रहा था। फिर तेज की एक किरण को पकड़कर उसके सहारे चलते गये। चलते-चलते थक गये कहीं उस तेज का अन्त ही नहीं मिला। तभी श्री प्रभुजी ने उन्हें ध्यान से उठा दिया और हँसते हुए बोले—'क्यों रे राजे! हमसे उपाय सीखकर तू हमारी ही परीक्षा लेने लगा।'

वैज्ञानिकों ने प्रभा-मण्डल का चित्र लेने वाले संवेदनशील कैमरे का आविष्कार कर लिया है। उससे स्थूल के परे कोई सूक्ष्म चेतन शक्ति भी है, इस तथ्य को लोग स्वीकार करने लगे हैं। सोवियत रूस में एक दशक पूर्व एक इलेक्ट्रानिक विशेषज्ञ सेमयोन किलियान ने अपनी वैज्ञानिक पत्नी वेलेंटिना के सहयोग से किलियन फोटोग्राफी की एक विशेष विधि का आविष्कार किया जिसके द्वारा मनुष्यों, अन्य प्राणियों तथा पौधे के अन्दर तथा उनके इर्द-गिर्द होने वाले सूक्ष्म विद्युतीय कार्यों का चित्रण किया जा सकता है। पत्ते को तोड़कर उसके चित्र लिये गये तो विचित्र दृश्य देखने को मिले। तोड़े हुए पत्ते से प्रभा मण्डल निकल रहा था। पत्ता सूख गया तो फिर उसका चित्र लिया गया। सूखे पत्ते का प्रभा-मण्डल नष्ट था। प्रारम्भ में प्रभा-मण्डल ज्योतिर्मय थे पत्ते की मौत होने पर प्रभा-मण्डल भी नष्ट हो गये। इसी प्रकार मृत्यु के समय व्यक्तियों के चित्र लिये गये। मृत्यु के समय व्यक्ति के स्थूल शरीर से एक ज्योतिर्मय छाया निकल कर बाहर

दिखाई पड़ी। किलियन दम्पत्ति ने रोगी व्यक्ति के छाया चित्र खींचकर देखा कि व्यक्ति के हृदय, उदर तथा मस्तिष्क पर विभिन्न रंगों के सूक्ष्म धब्बे थे जो इन अवयवों से विसर्जित होने वाली विद्युत ऊर्जाओं की जानकारी देते थे तथा उसके प्रभाव को सूचित करते थे। सूक्ष्म शरीर के इलेक्ट्रोन ठोस शरीर के इलेक्ट्रॉन की अपेक्षा अधिक तेज रफ्तार से चलायमान होते हैं। जिससे वे स्थूल शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकते हैं। डा० जे० सी० ट्रस्ट ने भी संवेदनशील कैमरे के द्वारा आभा-मण्डल के फोटो लेने की टेकनीक खोज निकाली है। उसने मृत व्यक्ति के फोटों में कुछ चमकीले और कुछ धुंधले द्रव्य देखे। जब प्राणी मरता है—उसमें से आत्मा, कर्म भावनामय लिङ्ग शरीर तथा तैजस् सूक्ष्म शरीर बाहर निकलते हैं। आत्मा के साथ जब तक इन शरीरों का सम्बन्ध रहता है तब तक आत्मा मुक्त नहीं हो पाती। आत्मा तथा लिङ्ग शरीर अमूर्त है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा पुद्गलों के संयोग से नहीं बना अतः उसके चित्र नहीं लिये जा सकते उसका अनुभव बुद्धिरूपी कैमरे में ही हो सकता है।

स्थूल से सूक्ष्म की साधना—शवासन में लेटकर सूक्ष्म जगत की साधना सरलता से की जा सकती है। जैसे समकाय शिरोग्रीव बैठकर 'त्रिवृत' विधि से धारणा तथा ध्यान का अभ्यास करने पर पहले स्थूल आकृतियां ध्यान में आती हैं फिर ज्योतिर्मय छाया तथा अमूर्त ध्वनियां सुनाई पड़ती हैं। अभ्यास दृढ़ होता चला जाय तो तैजस धारणा पुष्ट होने पर सूक्ष्म जगत में प्रवेश करने का पासपोर्ट मिल जाता है। शवासन की साधना के लिए सीधे लेटकर आधी आँखें बन्दकर, पैरों में एक फुट का फासला तथा हाथों की हथेलियां ऊपर की ओर खुली अंगुलियां आधी मुड़ी हुई ऐसी अवस्थामें साधना प्रारम्भ करनी चाहिए पहले हम धारणा द्वारा स्थूल शरीर की त्वचा अस्थि, मज्जा, रस, रक्त आदि को ऊपर से नीचे तक बार-बार देखने का अभ्यास दृढ़ करें। फिर उससे क्रमशः सूक्ष्म में उतरकर शरीर के रासायनिक परिवर्तनों, ग्रन्थियों के स्रावों, हृदय की धड़कन, रक्त परिभ्रमण, नाभिमण्डलान्तर्गत जठराग्नि की क्रिया, श्वास-प्रश्वास को देखने का अभ्यास दृढ़ करें। उसके बाद और अन्दर उतरकर अपने तेजोमय शरीर को देखना प्रारम्भ करें। धीरे-धीरे यह अभ्यास भी दृढ़ हो जाय फिर सूक्ष्म शरीर को स्थूल से निकाल कर उसके द्वारा अपना स्थूल शरीर देखना प्रारम्भ करें। धीरे-धीरे सूक्ष्मके भी दृष्टा बन जावें। कारण में पहुँचकर सूक्ष्म के दृष्टा होते-होते कर्म-

संस्कारों के द्रष्टा बन जायें। उसके बाद देखने वाला और दिखाई देने वाला दृश्य जहाँ एक हो जाते हैं उस द्रष्टा को देखें। इस तरह हम उस स्थिति में पहुँच जायेंगे जिसे योग-दर्शन में 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।' सूत्र से कहा है।

सूक्ष्म शरीर में स्थित चक्रों के कमलों के बीजाक्षरों, उनकी कीर्णकाओं तथा शक्तियों पर ध्यान एकाग्र करने से भी सूक्ष्म जगत में प्रवेश करना सम्भव हो जाता है। यह यात्रा इतनी लम्बी है कि 'अनेक जन्म संसिद्धिः ततो याति परांगतिम्।' (गीता) अनेक जन्मों में मंजिल तक पहुँच पाता है। यह कथन साधन योग के अभ्यासियों के लिए है। सिद्धयोग के विद्यार्थियों को एक ही जन्म में अपनी मंजिल मिल सकती है। क्योंकि साधन-योग पिपीलिका मार्ग है और सिद्धयोग विहंगम मार्ग है। सामान्यतया साधकों को साधन-योग का रास्ता मिल पाता है। सिद्धयोग का मार्ग बहुत बड़े पुण्यों के फलस्वरूप मिल पाता है।

योगपथ का पथिक होने के लिए योग-दर्शन में महर्षि पतञ्जलि ने जो मार्ग बतलाया है, उसे अपनाकर सफलता के शिखर तक पहुँचा जा सकता है। योग सूत्र के समाधि-पाद के २० वें सूत्र में कहा गया है—

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधिप्रज्ञापूर्वकः इतरेषाम्।'

विदेह और प्रकृतिलीन योगियों को योग-सिद्धि के लिए कोई साधना नहीं करनी पड़ती। जन्म लेते ही वे पूर्वजन्म में छोड़ी हुई स्थिति से आगे चलने लगते हैं। किन्तु जो इस कोटि के साधक नहीं हैं उन्हें योगपथ के लिए पांच प्रकार की सम्पत्ति लेकर आगे बढ़ना चाहिए। सर्व प्रथम उनमें अपने लक्ष्य और मार्ग तथा मार्ग बताने वाले गुरु के प्रति प्रसन्नतायुक्त विश्वास होना चाहिए। श्रद्धा-वान को ही ज्ञान प्राप्त होता है। स्थूल शरीर को सारे रहस्य श्रद्धा की सम्पत्ति आते ही प्रकट हो जाते हैं। श्रद्धा से अपने लक्ष्य के प्रति उत्साह तथा धैर्य उत्पन्न होता है। धारणा की दृढ़ता बिना ब्रह्मचर्य के नहीं होती। ऊर्ध्व रेता ब्रह्मचारी धारणा तथा प्राणसंयमन के बल से सूक्ष्म जगत के रहस्यों को हस्तामलकवत् समझ लेता है। वीर्य के समस्त नाड़ियों में व्याप्त होने पर प्राण-वाहिनी नाड़ियां शक्ति का उत्सर्जन करने में समर्थ होती हैं तथा वीर्य की पुष्टि से जन्मां-तरकी संस्कारी स्मृति उपस्थित हो जाती है। दूसरे शब्दों में ब्रह्मचर्य रक्षा से कर्म शरीर का साक्षात्कार करने की क्षमता प्राप्त होती है। स्मृति उपस्थान से चित्त स्थिर होकर समाधि के द्वारा कारण शरीर का साक्षात्कार होता है। समाधि भावना से विवेकज्ञान पैदा होता है जिससे हर वस्तु के गुण धर्म स्वभाव को

योगी यथार्थ रूप से जानने लगता है जानने से उस वस्तु से वैराग्य हो जाता है जिससे अपने स्वरूप में स्थित होने की स्थिति प्राप्त हो जाती है।

जैन दर्शन ने शरीर को पुद्गलों का समूह माना है। जीव आकाशीय पुद्गलों (Electones) को मिलाकर शरीर पर्याप्ति, आहार-पर्याप्ति, भाषा, मन और श्वास का निर्माण करता है। जीव-सजीव है और ये सभी निर्जीव पदार्थ हैं। सजीव से निर्जीव का निर्माण तथा रूप परिवर्तन होता है। जीव की ही सृष्टि सूक्ष्म शरीर है जिसे सांख्य-दर्शन की 'सुवर्ण सप्तति' नामक ग्रन्थ में अप्पास्वामी ने पृ० ४० पर सात अवयव वाला माना है। गौड़ पाद—भाष्य में उसे आठ माना है। आठ अवयव हैं—बुद्धि+मन+अहंकार+पंच तन्मात्रायें। इनमें से मन का बुद्धि के साथ अन्तर्भाव करने से ये सात हो जाते हैं। विज्ञान भिक्षु सूक्ष्म शरीर को सत्रह तत्वों संघात मानते हैं—बुद्धि+अहंकार को मिलाने से एक तत्व हुआ तथा पंचतन्मात्रायें तथा एकादश इन्द्रिय। अन्यत्र यह अठारह तत्वों से निमित माना गया है। महदादि सूक्ष्म पर्यन्त लिङ्ग शरीर कहा जाता है जिसमें कर्मों के संस्कार सुरक्षित रहते हैं। सांख्य-दर्शन में कुछ विद्वानों का ऐसा लेख भी मिलता है कि—

तत्सूक्ष्म शरीरमेकादशेन्द्रिय संयुक्तम् त्रीन् लोकान् संसरति।

बुद्धि, अहङ्कार तथा पंचतन्मात्रायें और ग्यारह इन्द्रियों वाला सूक्ष्म शरीर तीनों लोकों में घूमता है।' सूक्ष्म शरीर में कितने ही तत्व हों, उसके साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए वीर्य रक्षा आवश्यक है क्योंकि वीर्यरक्षा से शक्ति के साथ-साथ ज्ञान क्रिया भी बढ़ती है। साधना के लिए शक्ति की अपेक्षा है। जैसे हाई पॉवर लेन्स से सूक्ष्म वस्तु का छाया चित्र लिया जा सकता है। उसी प्रकार वीर्यवान् साधक प्राणों का उत्क्रमण कर उन्हें ब्रह्मनाड़ी मार्ग से सहस्रार की ओर ले जा सकता है। कर्म शरीर या कारण शरीर का सम्बन्ध ओज से है। जिन साधकों का वीर्य सुरक्षित रहकर ओजरूप में बदल गया है वे ही कर्म-शरीर से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। ओज ही प्राण है तथा जीवन की ऊर्जा है। श्वास मात्र प्राण नहीं है। प्राण से श्वास गति करता है। अन्न का सूक्ष्म पदार्थ वीर्य है और वीर्य का भी सार तत्व ओज है। वही जीवनी शक्ति है। उसके बिना जीवन समाप्त हो जाता है। ओजस् या ऊर्जा के द्वारा ही स्थूल शरीर की रचना होती है। जैसा ओज होता है वैसा ही शरीर प्राप्त होता है। जैसे बीज में वृक्ष के फलों का स्वाद, पुष्पों का रंग, वृक्ष का आकार तथा पत्ते आदि छिपे रहते हैं

इसी प्रकार ओज में ही जीवन की ऊर्जा छिपी रहती है। सूक्ष्मका निर्माण इसी ओजसे होता है। इसे प्राणिक चेतना केन्द्र भी कहा जाता है। इस ओजस् के द्वारा इन्द्रियों की रचना होती है। यदि कर्म-शरीर में किसी इन्द्रिय की कमी हो तो स्थूल शरीर में उस इन्द्रिय का अभाव रहेगा। यदि कर्म-शरीर में मन का विकास होगा तो स्थूल शरीर में मस्तिष्क बनेगा। जिन जीवों में मन का विकास नहीं है उनके रीढ़ की हड्डी भी नहीं होती और मस्तिष्क भी नहीं होता। वर्तमान मनोवैज्ञानिक मनुष्य के आकार-प्रकार, व्यवहार तथा जीवन की सभी क्रियाओं के लिए शरीर के अन्दर विद्यमान नलिका विहीन ग्रन्थियों के स्राव को कारण मानते हैं। जैसे पिटीच्वरी ग्रन्थि के स्राव से काम-भावना नियन्त्रण में रहती है। गोनेड ग्रन्थि के स्राव से व्यक्ति कामुक हो जाता है। इसी प्रकार थाइराइड ग्रन्थि के असन्तुलित स्राव के परिणामस्वरूप व्यक्ति बौना रह जाता है। प्रत्येक प्रकार की बीमारी, बुद्धि की कमी या परिवर्तनों के मूल में ग्रन्थियों का स्राव ही कारण है।

योगियों ने ध्यान विज्ञान के द्वारा सूक्ष्म शरीर के रहस्यों को देखा। विज्ञान अभी तक उसे नहीं देख पाया है। शरीर शास्त्रियों के अनुसार हार्मोन ग्रंथियों के स्राव से उत्पन्न होते हैं। योग शास्त्र के अनुसार सभी परिवर्तन 'अनुभाव बन्ध' के द्वारा होता है। सारे रस स्राव कर्म-संस्कार की प्रेरणा (ऊर्जा) के द्वारा होते हैं। यह ऊर्जा यदि आत्मा की ओर तथा चेतना के उच्च स्तरों की ओर प्रवाहित होती है तो समाधि होगी। आत्म - भावना विकसित होगी। यदि वह धारा आहार, भय, मैथुन और परिग्रह केन्द्रों को प्रभावित करेगी तो व्यक्ति सूक्ष्म जगत में प्रवेश नहीं कर सकेगा। यह ऊर्जा का प्रवाह कुण्डलिनी शक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। जब यह ऊर्जा हृदय-कमल की पंखड़ियों को चेतन करती है तो समता तथा ज्ञान की सात्विक वृत्ति जगती है तथा आज्ञा-चक्र से ऊपर अवधि ज्ञान होता है। चेतना के स्तरों का साक्षात्कार करने से अनन्त शक्तियों की खिड़कियां खुल जाती हैं जिनसे होकर आत्म-शक्ति प्रवाहित होकर लोक-कल्याण करती है। श्वास-प्रश्वास जितनी गहरी होगी उतनी ही प्राणशक्ति ऊर्जस्वित होगी। श्वास की गति प्राणशक्ति से संचालित होती है और प्राणशक्ति सूक्ष्म प्राण (पर्याप्ति) से संचालित होता है वह जीवन के प्रारम्भ में ओजस् से निर्मित हो जाता है। सूक्ष्म शरीर का आधार यही ओज होता है। प्राण आकाश-मण्डल में व्याप्त होता है उसे श्वास द्वारा प्राणों के साथ एक-

रस करते हुए प्राप्त करते हैं। बाह्य आकाशीय प्राण शरीरस्थ सूक्ष्म प्राण को पोषण देता है। गहरी और लम्बी श्वासों के अभ्यास से प्राणशक्ति के द्वारा चेतना के नये-नये केन्द्र सक्रिय हो उठते हैं। इस क्रिया को जैन दर्शन की भाषा में 'दीर्घ श्वास प्रेक्षा' कहते हैं। 'समवृत्तिश्वास प्रेक्षा' तथा सूक्ष्म श्वास प्रेक्षा द्वारा मन के श्वास-प्रश्वास पर ध्यान केन्द्रित करना, उसे देखना तथा बाह्य श्वास को सूक्ष्म करना तथा अन्दर की प्राणशक्ति को बढ़ाने से चित्त की एकाग्रता बढ़ती है। एक नथुने से श्वास लेना और दूसरे से रेचन करने के अभ्यास से चेतना के विशिष्ट केन्द्रों का मार्ग खुलता है अतीन्द्रिय ज्ञान उपलब्ध हो जाता है जिससे सूक्ष्म शरीर के द्वारा योगी आश्चर्य चकित करने वाले कार्य कर सकता है।

स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीरमें गमन करने की विधि का संकेत योगदर्शन में विभूति पाद के ३८ वें सूत्र में उपलब्ध होता है—

बन्धकारण शैथिल्यात् प्रचार संवेदनात् च चित्तस्य परशरीरावेशः।

कर्मभोग के वशीभूत होकर चंचल मन शरीर में बन्दी बन गया है। समाधि के द्वारा बन्ध के कारण कर्मों का नाश हो जाता है तथा चित्तगामी नाड़ियों का ज्ञान हो जाता है। चित्त जिन नाड़ियों के द्वारा सर्वत्र विचरण करता है उसका ज्ञान समता की स्थिति में होता है। चित्तगामी नाड़ियों में संयम करने से चित्त के आने जाने का रास्ता मालूम हो जाता है। अपने चित्त को नाड़ियों से निकाल कर योगी दूसरे के शरीर में प्रविष्ट कर उसे प्रभावित कर देता है। चित्त के पीछे इन्द्रियां भी चली जाती हैं जैसे रानी मक्खी के पीछे अन्य मक्खियां उड़ जाती हैं और उसके कहीं बैठने पर सभी मक्खियां बैठ जाती हैं।

मुलडोन कृत 'The Project'on of Astral Body' नामक पुस्तक में प्राण के उत्क्रमण की एक विधि का उल्लेख किया गया है। फ्रांस के डुरविल ने भी इस विषय में अपनी पुस्तक में प्रकाश डाला है। यह विधि मनोवांछित स्वप्न देखने के लिए काम में लाई जाती है। जिस दिन यह प्रयोग करना है उस दिन निराहार रहें तथा मादक द्रव्यों का बिलकुल सेवन न किया जाय। मध्यरात्रि के अन्धकार में पीठ के बल लेटकर भ्रूमध्य में अपनी दृष्टि केन्द्रित करें। भ्रूमध्य के बिन्दु में लीन होने तथा प्राणमय सूक्ष्मशरीर के बाहर निकलते आने की भावना करते रहें। इस विधि से प्राणमय सूक्ष्म शरीर स्थूल पांचभौतिक शरीर से अलग होकर अपनी इच्छित वस्तु के निकट पहुंच जायगा। किसी इच्छित शरीर में प्रवेश कर उसे प्रभा-

वित करेगा। शरीर से बाहर आने पर सूक्ष्म शरीर 'सिलवर कार्ड' से भ्रूमध्य में जुड़ा रहता है। उसी सूक्ष्म तन्तु से प्राण पुनः लौटकर स्थूल शरीर में चले जाते हैं। यदि यह तन्तु टूट जाय तो प्राण स्थूल शरीर में लौटकर नहीं आ सकेंगे। संकल्प की दृढ़ता तथा श्री सत्गुरुदेव के चरण कमलों में यदि अनन्य श्रद्धा हो तो श्रद्धा योगी की मां की तरह रक्षा करती है। जब तक योगी नहीं चाहता तब तक सूक्ष्म तन्तु से शरीर का विच्छेद नहीं होता। श्री सद्गुरु तत्त्व काल के भी महाकाल है तथा कालातीत हैं। जब उनमें प्राणलय हो जाते हैं, उनके चरणों के तन्तुसे जुड़कर योगी सूक्ष्म से सूक्ष्म में प्रवेश कर उसमें से उसी कृपा-तन्तु का सहारा लेकर वापिस लौट आता है। साधना मार्ग में सफलता पाने के लिए इसीलिए सद्गुरु शरणागति तथा गुरु-भक्ति को बहुत आवश्यक माना गया है। एक कहावत प्रसिद्ध है कि जहां इष्ट होता है वहां कभी अनिष्ट नहीं होता है। इष्ट की कृपा की डोरी से साधक सर्वत्र निर्विघ्न रूपसे विचरण कर सकता है।

जर्मनी में ग्रेस्टाल्ट (Gestalt) नाम का मनोविज्ञान हुआ है। वह समग्रता या पूर्णतावादी सिद्धान्त का आविष्कर्त्ता माना जाता है। उसके नाम से मनोविज्ञान में एक सम्प्रदाय चल पड़ा है जिसे गेस्टाल्टिज्म या होलिस्टिक स्कूल कहते हैं। उसका मत है कि हमारी अनुभूति पूर्ण की होती है फिर अंशकी अनुभूति होती है। यदि हम उसी सिद्धान्त के अनुसार महदादि सूक्ष्म-पर्यन्त एवं मनो बुद्धि तथा स्थूल जगत की चेतना अच्छिन्न एकरूपता की अनुभूति कर सके तो हमारा भय समाप्त हो जायगा और हम आकुतो भय होकर इन्द्रियों से परे मन और मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे महत् तथा महत् से परे पुरुष की एकात्मता, पूर्णता तथा इकाई का साक्षात्कार कर सकेंगे। इस सिद्धान्त का उपबृंहण भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में—

अविभक्तं विभक्तेषु
य: पश्यति स पश्यति।

इस भिन्नताओं के बीच में सर्वत्र एक सूक्ष्म सूत्र अनुस्यूत है जो उस एकीभूत सूक्ष्म चेतन की अनुभूति करता है वही विज्ञानी पुरुष होता है। जैसे माला के दानों को एक सूत्र एक रूप बना उसे माला स्वरूप प्रदान करता है उसी प्रकार स्थूल से सूक्ष्म तक सभी पदार्थों को ऊर्जा का तन्तु एक बनाता है। प्रत्येक वस्तु में आकार-प्रकार की कुछ न कुछ व्यवस्था दिखाई पड़ती है। इस व्यवस्था के मूल में वह चेतन सत्ता है। ऊर्जा के महासागर में सभी पदार्थ तैर रहे हैं। अन्दर-

बाहर वही सूक्ष्म चेतना पदार्थ को घेरे हुए है। सूक्ष्म का दर्शन स्थूल यन्त्रों के सहारे नहीं हो सकता। सूक्ष्म दर्शन के लिए सूक्ष्म यन्त्र चाहिए। नेत्रों से सब कुछ नहीं देखा जा सकता। जब गुरुदेव की कृपा से दिव्य दृष्टि मिल जाती है तो संयम के बल से सूक्ष्म-तत्वों की उपलब्धि हो जाती है। योगी का स्थूल भूतों से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणुओं तक उसका अधिकार हो जाता है। उन तत्वों का संयोग और वियोग करने से वह नई सृष्टि बना देता है। यह स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा योग के अपरिग्रह, प्रत्याहार, प्राणायाम तथा धारणा, ध्यान और समाधि आदि साधनों से होती है केवल विचार तथा तर्क से वस्तु के सारे धर्मों का ज्ञान नहीं हो सकता।

卐

❁ धर्म और कर्म ❁

अपने आस-पास चारों ओर फैले प्रकृति-सौन्दर्य पर दृष्टि दौड़ाइये। उसकी प्रति-क्षण की हलचल पर सतर्कता से ध्यान दीजिये। उसकी बदलती अवस्था से क्षण भर एक-रूप बनिये और उसकी परिवर्तित अनुपम स्थिति का बारीकी से अवलोकन कीजिये।

वह देखिये, पूर्व की ओर से धीरे-धीरे मन्थर गति से ऊपर उठ रहा सूर्य-बिम्ब! वह देखिये, तरु-लताओं पर स्वच्छन्द डोलने वाली रम्य कलिकायें! नींद से जगे व्यक्ति के अर्धोन्मीलित नेत्रद्वय की तरह बड़ी स्वस्थता से धीरे-धीरे वे अनेक पंखुड़ियां खोले जा रही हैं। क्षणभर में उन पंखुड़ियों के बीच छिपा परिमलयुक्त परागकुम्भ अब सुस्पष्ट दीखने लगा। उसमें भरे सुधामृत का आकण्ठ प्राशन करने के लिए गुञ्जार करते हुए आने वाला वह अलि-पटल! सभी कुछ एक ही क्षण में!

सुगन्ध दीखती नहीं। उसकी अनुभूति केवल श्वासों को ही होती है! फिर भी कितना मस्त और मतवाला बनाने वाले हैं वे पराग-कण और उनका वह परिमल, जिससे मलिन मन को सद्भावना का आकार प्राप्त होता है और वह अपनी मस्ती में झूमने लगता है! पर क्षणभर में जाने कहां से गुञ्जार करते भ्रमर आते हैं और वे चराचर को हंसाने-खिलाने वाले फूलों के परिमल युक्त मकरन्द बिन्दुओं का पान करके तत्काल जिस रास्ते आये, उसी रास्ते गुञ्जार करते हुए ही निकले जा रहे हैं। हम केवल आंखें मूंद खोलते ही रहते हैं।

यह सारा क्या है? इससे हमें क्या शिक्षा मिलती है? कैसा बोध मिलता है? प्रत्येक के कर्तव्य-कर्म भिन्न भिन्न हैं, प्रत्येक धर्म भिन्न-भिन्न! कारण, धर्म ही हर-एक से कर्म-कर्तव्य करा लेता है। धर्म के हाथों कर्म की सार्वभौम सत्ता है। धर्म के कारण ही एक बार नियत कर्म तब तक, जब तक कि वह साकार स्वरूप में बना हुआ है, बदल नहीं सकता। ❁❁

पूर्व प्रकाशित से आगे—

❁ निजानुभूतियाँ ❁

❁ श्री महेन्द्रनारायणसिंह कोटपर, बरैनी, कछवा मीरजापुर

पुष्प प्रसाद ने मृत्यु मुख से खींचाः–

उत्तर प्रदेश के मिरजापुर जिलान्तर्गत बरैनी ग्राम निवासी श्री पं. हरिप्रसाद जी उपाध्याय व्याकरणाचार्य उपनाम नामवर पंडित के सबसे छोटे भाई पंडित याज्ञवल्क्यजी उपाध्याय की धर्मपत्नी को जितने भी बच्चे हुये माह दो माह की अल्पायु में ही सभी को मृत्यु ने अपना ग्रास बना लिया था। परम-कल्याणघन श्री गुरुदेव जी का योग प्रचारार्थ एवं अपने बच्चों को चरण-कमल का दर्शन देने के निमित्त सन् १९६२ ई० की फरवरी में दुबारा बरैनी ग्राम में आगमन हुआ। नाथ के आगमन के १२ दिन पूर्व श्री पं. याज्ञवल्क्यजी उपाध्याय की धर्मपत्नी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई थी, पर हमेशा की भांति बालक को जन्मते ही उस पर भयंकर रोगों का आक्रमण हुआ। अपनी आयु के १५ दिन उक्त बच्चा अपनी अन्तिम सांसे गिनने लगा। उसे बचाने के लिए चिकित्सकों के सारे प्रयत्न निष्फल रहे। उपाध्याय जी के यहां इस दुःख के कारण २-३ दिन से भोजन नहीं बना था। दैवी प्रेरणा से सायंकाल पं. हरिप्रसाद जी उपाध्याय आकर मुझसे सारा वृतान्त बड़े ही दुःखी शब्दों में सुनाने लगे। अन्त में पंडित जी ने कहा कि मेरे भाई का वंश डूबना चाहता है। महाराज जी के सामने कुछ कहने को मेरा साहस नहीं हो रहा है। मेरी ओर से आप प्रार्थना करदें, शायद कुछ कृपा हो जाय। मैंने पंडित जी से निवेदन किया कि श्री प्रभुजी के समक्ष कुछ कहने के लिये मैं आपसे भी कम साहसी हूं। मेरे परम प्रभु अन्तर्यामी हैं उनकी दृष्टि से कुछ भी ओझल नही है। योग-योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के पावन स्वरूप की आरती के समय पर श्री गुरुदेव जी आरती पूजन के कमरे से उतरेंगे तब तक आप धैर्य रखिये। ठीक समय पर श्री गुरुदेव जी आरती पूजन के कमरे में पधारे। आसन पर विराजमान होकर घट-घट वासी दयानिधि ने सब पर अपनी कृपा दृष्टि फेरकर फिर पंडित जी से सहसा पूछा कहिये पंडित जी कुशल तो है। प्रश्न सुनते ही पंडित जी ने रूंधे गले से सारा हाल कह सुनाया। यह भी कहा कि महाराज जी बच्चे को अंतिम

समय का जोर-जोर का श्वांस चल रहा है। उसे गंगाजी में प्रवाहित करने की तैयारी हो रही है। सारा वृतान्त सुनकर श्री गुरुदेव जी ने एक पुष्प उठाकर उपाध्याय जी को यह आदेश दिया कि इसे ले जाकर पानी से धोकर उसी धुले हुये जल को बच्चे को पिला दो। सवेरे पं. हरिप्रसाद जी ने आकर सर्वशक्तिमान श्री गुरुदेव जी के चरण कमलों में अपना सिर रखकर कहा कि हे कृपानिधान आपके पुष्प प्रसाद के जल के सेवन करने के थोड़ी देर बाद बच्चा स्वस्थ होने लगा, अब उसकी हालत आशाजनक है। नाथ की करुणा कृपा से उक्त बच्चा जिसका नाम नरेन्द्रकुमार उपनाम कल्लू है इस समय ६ वर्ष का हो चुका है। जब-जब श्री गुरुदेव जी का बरैनी ग्राम में आगमन होता है इस ओर कड़ा पर्दा रहते हुये भी बच्चे की मां अपने उक्त बच्चे के साथ आकर परम कृपानिधि का चरण स्पर्श करती है। अपने पिता के घर जाते समय घर के बड़ों से अनुरोध करके जाती है कि श्री गुरुदेव जी के आगमन की सूचना मुझे अवश्य देना जिससे मुझे भी नाथ के चरण कमलों का दर्शन प्राप्त हो जावे।

मृगी रोग से त्राण पाने के लिए पुष्प-प्रसाद की प्राप्ति एक को चंगे दो हुए

बरैनी ग्राम के निवासी पं. हरिप्रसाद जी उपाध्याय व्याकरणाचार्य जिनके भतीजे श्री नरेन्द्र जी के बीमारी का ऊपर वर्णन हुआ है की एक मात्र बहन श्रीमती शान्ति देवी का विवाह मिरजापुर जिलान्तर्गत जमुआ बाजार से सटे हुए दुनाई नामक ग्राम के श्री पं. सकंटा-प्रसाद जी दुबे से हुआ है। शान्ति देवी के बड़े पुत्र मंगलाप्रसाद दुबे जिनकी आयु फरवरी १९६३ ई० में लगभग १२ वर्ष की थी। उन्हें छः वर्ष की आयु से ही मृगी रोग का दौरा होता था। सन् १९६३ ई० में तो यह रोग पूरी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। दिन भर में दस बारह बार दौरा आता था, लड़का बहुत अशक्त हो चुका था। घर के लोग उसे चारपाई से उठाकर शौच लघु शंका आदि करवाते थे। बच्चे में हिलने-डुलने की शक्ति अपने से समाप्त हो चुकी थी। माता-पिता औषधोपचार, तन्त्र मन्त्र, गण्डा तावीज, साधु फकीर आदि की सहायता लेकर निराश हो चुके थे। दुबे जी के एक अन्य पुत्र श्री पारस नाथ जी को भी चौथे छठवें दिन मृगी का दौरा हुआ करता था। पं याज्ञवल्क्य जी उपाध्याय के पुत्र नरेन्द्र कुमार जी द्वारा प्राप्त पुष्प प्रसाद को जल में धोकर पान करने से रात्रि भर में ठीक हो गये। उस समय हरि-प्रसाद जी की बहिन बरैनी में भाई के घर पर थी, गुरु चरणों के कृपा चमत्कार को देखकर श्रीमती शान्ति देवी अनाथनाथ के चरणों में

अपने बच्चे की बीमारी अच्छी कर देने के लिये रो-रो कर बार-बार प्रार्थना की। परम कृपालु दयानाथ ने उन्हें सान्त्वना देते हुये आदेश दिया कि देवी अपने बच्चे को लाकर मुझे एक बार दिखा दो। उस दिन शुक्रवार था। दिन ढल चुका था, बरनी ग्राम से दुनाई सात मील दूरी पर है। अगले दूसरे दिन शनिवार पड़ता था। शनिवार व मंगलवार को प्रायः श्री गुरुजी कोई नया कार्यक्रम प्रारम्भ नहीं करते हैं। साथ ही उसी दिन मध्यान्ह १२ बजे दिन में प्रभुजी को रेलगाड़ी से सवाई आश्रम जाना भी अति आवश्यक था। जाड़े का छोटा सा दिन, लड़का अशक्त। सब कठिनाइयां सोचकर पं. जी निराश हो रहे थे, तथा शान्ति देवी गुरुचरणों के पास बैठी बार-बार रुदन करती हुई प्रार्थना कर रही थी। साईकिल से एक आदमी शीघ्रता से बच्चे को लाने के लिए दुनाई भेजा गया। संदेश वाहक से लड़के के पिता श्री संकटा-प्रसाद जी द्विवेदी ने रोगी को भेजने से इन्कार करते हुये कहा कि जाड़े की रात है बच्चा अशक्त है उसे ठीक होने के लिए हम सबने कोई उपाय नहीं छोड़ा है जाना बेकार है। भेजा हुआ व्यक्ति तो निराश होकर वापस लौट आया पर द्विवेदी जी के हितैषी श्री दीपू पहलवान ने पं. जी को समझाते हुए कहा कि बहुत बड़े महात्मा आये हुए हैं। तुमसे कुछ ले भी तो नहीं रहे हैं। तुम्हारी ससुराल वालों ने कुछ सोच समझकर ही बुलाया है भेजने में क्या बुराई है। उनके समझाने पर पं. संकटा-प्रसाद जी रात में यह जानने के लिए बरनी आये कि बातों में कुछ सत्यता भी है या यों ही शोर मचा हुआ है। यहां आते ही ससुराल की सारी घटना वे देखकर अवाक् रह गये। फिर तुरन्त ही अपनी साइकिल से घर गये। दूसरे दिन प्रातः ही किसी प्रकार लड़के को ले आकर परम प्रभु श्री गुरुदेव के समक्ष उप-स्थित कर दिया। भक्त-वत्सल ने बच्चे की मां को पुष्प प्रसाद देकर कहा इसी के सेवन करने से बच्चा निरोग हो जावेगा पर पुराना रोग ग्रामीण वातावरण में पली शान्ति देवी को विश्वास ही नहीं होता था कि इतना पुराना रोग इतने से ही कैसे ठीक हो जावेगा, वही हुआ। गुरु वाणी कभी असत्य नहीं होती। पुष्प प्रसाद का सेवन केवल मंगलाप्रसाद ने किया पर चंगे हो गये, दोनों भाई मंगलाप्रसाद जी व पारसनाथ जी। ठीक होने के एक वर्ष बाद तक शान्तिदेवी को सन्देह बना रहा कि मृगी का दौरा सम्भवतः पुनः होने लगे। अब उनके दोनों बच्चे भले चंगे हैं। श्री मंगला-प्रसाद जी दुबे जिनके जीवन से माता-पिता निराश थे इस समय १९ वर्ष के हैं। उत्तर प्रदेश सरकार के नलकूप (ट्यूब वैल) विभाग में वे इस समय कार्य कर रहे हैं। क्रमशः

卐 योगमाया 卐

— एक योगसाधक

योगमाया का अर्थ है योग की शक्ति योग द्वारा उत्पन्न की गई यथार्थ प्रकृति अथवा योगी का संकल्पित ध्येय की मूर्ति। बहुधा योग को संश्लेषण क्रिया के रूप में ही जाना जाता है। योग वह विद्या है जो सारे स्थूल विखरावों को संश्लेषित करके उसे उसके कारण में लय कर देता है। विश्व का क्लिष्टीकरण तथा विश्व स्रष्टा में लयता प्रदान करने की विद्या के रूप में जाना जाता है। यह जीव को उसके यथार्थ स्वरूप में अवस्थित करने के कारण तथा जीव को समाधि में ईश्वर से समता देने के कारण, योग साधक के सापेक्ष संश्लेषण के रूप में जाना जाता है। परन्तु योग की दूसरी प्रक्रिया जो विश्लेषणात्मक है उससे मात्र योगी का ही परिचय हुआ करता है। कल्प के प्रारम्भ में श्री विष्णु महान् योगी अपनी योगमाया के आश्रित होकर सृष्टि प्रक्रिया प्रारम्भ करते हैं। उस समय योग ही सूक्ष्मातीत तत्वों में से पुनः विश्लेषित होकर क्रमशः शनैः शनैः सूक्ष्म, स्थूल एवम् स्थूलतर जगत का निर्माणक सिद्ध होता है। यह हुआ योग की संश्लेषणात्मक प्रक्रिया।

एक परमसिद्ध योगी जो ज्ञान-विज्ञान से युक्त है वह संश्लेषण एवम् विश्लेषण दोनों प्रक्रियाओं को भली प्रकार क्रियान्वित करता रहता है। इसीलिए परम योगी अपने श्वास एवम् प्रश्वास के अन्तराल में ही ब्रह्मा सदृश्य जगत का निर्माण करके उसे पुनः अपने में विलीन कर लेता है। पौराणिक ग्रंथों की अनेक कथायें प्रमाणस्वरूप उद्धरित किये जा सकते हैं। योग-वाशिष्ठ में बतलाया गया है कि योगी कैसे दो अणुओं के मध्य अपनी कल्पित सृष्टि प्रादुर्भूत कर लेता है। यह बात मात्र वही समझ सकता है जो योग की उपरोक्त दोनों कथित विद्याओं से परिचित है। योगी संश्लेषण एवम् विश्लेषण में सिद्ध होकर दिक्-काल जयी हो जाता है। शाम्भवी तथा अन्य उन्मोत्तम सिद्धियाँ उसके मनोराज्य में विलसित होती हैं। उसका सूक्ष्म संकल्प ही सिद्ध दायी हुआ करता है।

प्रकृति पर्यन्त सारी ज्ञात-अज्ञात शक्तियां द्वैत बद्ध हैं। विघटन एवम् संघटन दोनों प्रक्रियायें शक्ति से सम्भावित हैं। इन्हीं अर्थों

में योग की शक्ति भी अभिहित है। योगमाया किसी भी प्रकार की कल्पित प्रकृति को प्रकट कर देती है तथा उसे चाहने पर तिरोहित भी कर लेती है। योगी की यह कल्पित सृष्टि जीव के दृष्टिकोण से उतना ही सघन होती है जितनी ब्रह्मादि योगियों की सृष्टि। इसलिये साधारण अथवा असाधारण मानव एक योगी की योगमाया को नहीं समझ सकता। कारण मात्र यह है कि जीव के साधन सीमित हैं।

प्रकृति है क्या ? एक व्यक्ति की प्रकृति यदि समझ लें तो समष्टिगत प्रकृति का थोड़ा बोध मिल जायेगा। अहं, बुद्धि, मन, चित्त, पंच ज्ञानेन्द्रियों तथा पंच कर्मेन्द्रियों के अनभूत विषयों तथा कर्मों का सम्पादन समुच्चय जो जन्म-जन्मान्तरों तथा भिन्न-भिन्न योनियों में अनभूत होता आ रहा है। यही सब मिलकर एक व्यक्ति की प्रकृति को जन्म देता है। यहां यह विचारणीय है कि अन्तःकरणों का विकास सर्व साधारण में नहीं के बराबर हुआ रहता है। योगाभ्यास द्वारा साधक पहले अन्तःकरणों को विकसित (परम विकास) करके पंचतन्मात्राओं, पंचमहाभूतों को भली प्रकार जान जाता है। पुनः संयम के द्वारा उसका नियंत्रण पंचमहाभूतों पर कायम हो जाता है। ऐसे भूतजयी योगी को समष्टि प्रकृति का यथार्थ बोध होता है। वह अपनी योगशक्ति के माध्यम से चाहे तो नाना प्रकृतियों को जन्म दे देवें, अथवा प्रकृति के भयावह दुस्तर जाल को काटकर एक क्षण में निस्तार कर लेवें।

योगमार्ग में गुरुतत्व की अपरिहार्यता उपरोक्त अर्थों में ही विहित है। गुरुतत्व स्वयं ईशतत्व है। जो प्रकृति को निरूपित करता है। वही उसे तिरोहित भी करने वाला है। प्रकृति का निरूपण एवं तिरोहितीकरण ही योगमाया है। श्री गुरुगीतान्तर्गत देखें--

गुकारः प्रथमोवर्णो,
मायादि गुण भासकः।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म,
मायाभ्रांति विमोचकः॥

अर्थः- गुकार प्रथम वर्ण माया आदि गुण का भास कराने वाला है। दूसरा रुकार ब्रह्म है जो माया की भ्रांति का नाश करने वाला है। अतः गुरु के मुख में स्थित योग विद्या गुरु की भक्ति से प्राप्त होती है। तीनों लोकों में गुरु के सिवाय कोई दाता नहीं है।

गुरुवक्त्रेस्थिता विद्या
गुरुभक्त्यां च लभ्यते।
त्रैलोक्ये स्फुर्न वक्तारो
देवाद्यसुरपन्नगा॥

एक बार एक अनभूतज्ञ साधक ने श्री गुरुदेव भगवान् से पूछा - प्रभो ! कपिलादि जिन्हें पुराण स्वयं भगवान मानते हैं। वे भी

क्रोध करते हुए, श्राप देते हुए दीख पड़ते हैं। क्या ये महान् पुरुष कर्म विवश नहीं हैं। श्री प्रभु मुस्कराते हुए बोले—देखो! ऐसा समझो। यदि कोई व्यक्ति जिसके पास तीक्ष्णतम् अस्त्र है वह यदि संयोगवश किसी जाल में फँस जाता है तो उसे उस जाल से निकलने में कितनी देरी लगेगी। काटने का अभिनय करते हुए भगवान् ने कहा—यूँ काटा! और संस्कारों के जाल को भस्म करके मुक्त हो गया। परन्तु साधारण जीव जिसके पास वह अस्त्र नहीं है उसका तो बुरा हाल होगा। जाल में फँसा तो छटपटायेगा तथा जितना उद्यम करेगा उतना ही जाल में जकड़ता जायेगा। योगी अपनी योग शक्ति से ही सर्वथा स्वतन्त्र सत्ता कायम रखता है। अतः महापुरुषों की क्रियायें जो देखने में साधारण जीवों के कृत से भी साधारण हों वह भी असाधारण ही हुआ करती हैं। क्योंकि विज्ञ का अभिनय अभिनय है। अविज्ञ का अभिनय नहीं अपितु कर्म हुआ करता है।

इस लेखमाला में महायोगियों के चरित्र जो योगमाया से सम्बन्धित है, एक-एक करके देने का प्रयास किया जायेगा जिससे उपरोक्त सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण स्वयमेव हो जायेगा। भगवान जगदात्मा अखिल लोक लोकेश्वर योगाधिराज राजेश्वर श्री कृष्ण ने स्वयं स्वीकारा है कि हे अर्जुन हम अपने को अपनी योगमाया से छिपाये रखते हैं जिससे कोई बिना जताये हमें नहीं जान सकता।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य
योगमाया समावृताः ॥

❀ भगवान् कौन ? ❀

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, समस्त शक्ति, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन—छहों की समष्टि को भग कहते हैं और जिसमें ये छहों गुण विद्यमान हों वही भगवान् कहलाता है। इसी के साथ-साथ भगवान् वही कहला सकता है जो सभी जीवों की उत्पत्ति और प्रलय या विनाश, निराश्रयता और साश्रयता तथा विद्या और अविद्या को भली-भांति जानता समझता हो, जो बड़े और छोटे सब जीवों को उत्पन्न करता, उनकी रक्षा करता और उनपर शासन करता रहता है, वही करुणामय भगवान् हैं।

यही वास्तव में वह भगवतत्त्व है जिसे भली-भाँति समझ लेने पर फिर कुछ जानना समझना शेष नहीं रह जाता। इसी भगवतत्त्व को समझाने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कुरुक्षेत्र में गीता के रूप में उपदेश दिया और अपना विराट्रूप भी दिखलाया तथा इसी भगवतत्त्व को स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव को समझाकर बदरिकाश्रम भेजा था।

—श्री सीताराम चतुर्वेदी

नारी शक्ति का स्रोत

श्रीमती सरिता भारद्वाज एम. ए. बी-एड.

हिन्दी साहित्य के रहस्यवादी कवि स्वर्गीय श्री जयशंकरप्रसाद ने कामायनी महाकाव्य में नारी के उत्कृष्ट स्वरूप का चित्रण किया है। दूसरी ओर राष्ट्र कवि स्वर्गीय श्री मैथिलीशरण गुप्त ने नारी के अबला तथा असहाय स्वरूप का चित्रण कर उसे शक्तिहीन चित्रित किया है–'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और नयनों में पानी' कहकर नारी के उदात्त तथा योग-ऐश्वर्य सम्पन्न स्वरूप को आवृत कर दिया है। प्रसाद जी ने नारी के योग-ऐश्वर्य स्वरूप की निवृत्ति निम्न पंक्तियों में की है—

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत पगनग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
मानव के सूने जीवन में ॥

वास्तव में नारी अमृत का निर्झर है और पृथ्वी पर स्वर्ग की सृष्टि करने की क्षमता रखती है। वही जब अविद्या तथा माया रूपा बन जाती है तो स्वर्ग भी नरक बन जाया करता है। वैसे अविद्या रूपा भी प्रच्छन्न रूप से मनुष्य का उपकार करती है। मनुष्य सीधे सीधे जगत के प्रपञ्चों से उपराम नहीं पाता। कभी कभी अविद्या रूपी नारी की कर्कशवाणी प्रताड़ना, कलह तथा दुराचार से तङ्ग आकर वह जागतिक प्रलोभनों से वीतराग होकर उपासना मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है। द्वेष-जनित वीतरागता—व्यक्ति को ऊँचा अवश्य उठाती है किन्तु कहीं अचेतन में छिपा हुआ द्वेष का संस्कार व्यक्ति में बदले की भावना का रूप बनकर पुनर्जन्म का कारण बन जाता है जिससे अगले जन्म में दाम्पत्य का संस्कार बन जाया करता है। इसके मूल में कारण यह है कि मनुष्य अचेतन में दुष्टा नारी के चिन्तनसे भरा रहता है तथा नारी भी अपनी उपेक्षा के कारण अपने पति के प्रति शिकायतों से भरी रहती है। देहपात के समय स्त्री पुरुष में शिकायत का भाव भरा रहता है जिसके परिणामस्वरूप बदला लेने-देने के लिए निकृष्ट योनियों में जन्म होता है। जो सद्गृहणी विद्या स्वरूपा होती है वह बहिन, पत्नी, सहेली मंत्री तथा आराधक रूप में पूरे परिवार की शक्ति का स्रोत होती है। चुडालो-पाख्यान में महर्षि वशिष्ठ भगवान राम को

उपदेश देते हैं—हे राम ! नारियों को कभी निरादर की दृष्टि से न देखो । क्योंकि—

मोहादनादि गहना-
दनन्त गहनादपि ।
पतितं व्यवसायिन्य-
स्तारयन्ति कुलस्त्रियः ॥
शास्त्रार्थं गुरुमन्त्रादि
तथा नोत्तारणक्षमम् ।
यथैताः स्नेहशालिन्यो
भर्तॄणां कुलयोषितः ॥
सखाभ्राता सुहृद् भृत्यो
गुर्मित्रं धनं सुखम् ।
शास्त्रमायतनं दासः सर्वं
भर्तुः कुलाङ्गना ॥
सर्वदा सर्व प्रयत्नेन
पूजनीयाः कुलाङ्गनाः ।
लोकद्वय सुखं सम्यक्सर्वं-
यासु प्रतिष्ठितम् ॥

अर्थात् अनन्त गहन मोहसागर में निमग्न अपने पतियों को निरन्तर उद्योग परायण स्त्रियां तार देती हैं । शास्त्रों के उपदेश, गुरुदेव के उपदेश, मन्त्रजप आदि साधन मोह-सागर से पार करने में इतने समर्थन नहीं हैं जितनी कि पति-सेवा-परायण सद्गुणों की खान मधुर भाषिणी कल्याणीस्वरूपा कुल-मर्यादा का पालन करने वाली स्त्रियां । वे अपने पति के लिए समय-समय पर मित्र, भाई, बन्धु, नौकर, गुरु, धन, सुख, शास्त्र, घर, दासी आदि सब कुछ होती हैं । इसलिए सदा सर्व भावेन कुल की आनबान और शान बढ़ाने वाली नारियों की देवी भाव से पूजा करनी चाहिए क्योंकि नारियों में लोक और परलोक का पूर्ण सुख निहित है ।

नारी ही पति को देवत्व प्रदान करती है । हर समय उसके मंगलमय भविष्य की कामना तथा चिन्तन नारी ही करती है । अपने हृदय के असीम स्नेह तथा समर्पण के द्वारा पुरुष की परुष वृत्तियों को कोमल तथा मृदुरूप करने में नारी का हाथ है । पुरुष बुद्धि तत्व प्रधान होता है और नारी हृदय-सत्व-भाव प्रधान होती है । नारदीय भक्ति सूत्र में भक्ति का स्वरूप समझाते हुए नारद जी कहते हैं कि जब व्यक्ति में अपने उपास्य के प्रति अनन्यता—सब कुछ तू ही है मैं कुछ नहीं—यह भाव उदित हो जाता है तब भक्ति का उदय होता है जिसको पाकर व्यक्ति अमृत और तृप्त बन जाता है । इस कथन की पुष्टि में वे व्रज गोपियों की अनन्यता का दृष्टान्त देते हैं—यथा व्रजस्त्रियः ।'

नारी माता के रूप में बालक को चूम-कर, हृदय से लगाकर, गाकर, दूध पिलाकर

तथा कर्म में प्रवृत्त कर प्रेम को विशुद्ध रूप का ज्ञान कराती है। जो माता के ममत्व और प्रेम से वंचित रह जाते हैं उनमें प्रेम के फल मुश्किल से लगते हैं। जो बिना फलदार वृक्षों की भाँति हो जाते हैं। माता का प्रेम शिशु के लिए दूध बन जाता है। रूपान्तरण का रहस्य तथा पाठ माता अनजाने ही बालक की रगरग में भर देती है। प्रेम वस्तु के गुण-धर्म को बदल देता है। ज्ञान में यह सामर्थ्य नहीं। इसीलिए प्रणिधान से योग-सिद्धि शीघ्र होती है, ज्ञान से उतनी शीघ्र नहीं। प्रेम-भाव दूध बनकर रिसने लगता है और वह प्रेम ही बालक के शरीर के पोषण का कारण बनता है। जो मातायें अपने शरीर के सौन्दर्य के नष्ट होने के डर से अपने बच्चों को स्तन-पान नहीं कराती वे अपने बच्चों को प्रेम की शक्ति से वंचित कर देती हैं। उपासना के लिए प्रेम भरा हृदय चाहिए। वह हृदय अच्छी माता दुग्ध-पान के द्वारा बच्चे को अनजाने में दे दिया करती है।

बालक पारिवारिक स्नेह का आदान-प्रदान पाकर धीरे-धीरे युवा बनता है। उस समय नारी पत्नी रूप में उसके हृदय में आनन्द तथा उल्लास एवं उत्साह भर देती है। जिस प्रकार चट्टान में मूर्तियां छिपी रहती हैं उसी प्रकार मनुष्य में जीवन की सारी सम्भावनायें उसके चित्त में छिपी रहती हैं। मूर्तिकार सुन्दर मूर्ति बना देता है किन्तु जब तक उसमें प्राण-प्रतिष्ठा नहीं होती तब तक उसमें देवत्व नहीं आ पाता। उसी प्रकार माता द्वारा जन्म लेकर जब तक व्यक्ति शक्तिदात्री नारी द्वारा उपास्य तथा पूज्य नहीं होता तब तक उसमें उपासना का प्रवाह संचरित नहीं होता। जो पूर्ण ब्रह्मचारी हैं वे भी नारी मात्र में जब तक मातृ-बुद्धि नहीं रखते काम-विकार से मुक्त नहीं हो पाते। उनमें काम-विकार अहंकार का रूप ले लेता है। अतः शास्त्रकारों ने उपदेश दिया--'मातृवत् परदारेषु।' माता के सामने जब अपने को व्यक्ति खड़ा कर देता है तो उसमें शैशव--छोटे बच्चे का भाव स्वतः ही प्रकट हो जाता है। निर्विकार प्रेम तथा कृतज्ञता की अवस्था उसमें स्वतः उदित होने लगती है। माता के प्रति अहसान से उसका अन्तःकरण भर जाता है। प्रेम के स्वरूप का जो प्रवाह दूध के रूप में उसे मिला था तथा उसके रोम-रोम में ओत-प्रोत हो गया था उसके स्मरणमात्र से उसमें आनन्द का उत्साह फूटने लगता है। ममता, समर्पण, निर्भयता, निश्छलता, कष्ट सहिष्णुता सब कुछ 'माता' के स्वरूप से प्रवाहित होता है। भगवान शंकराचार्य स्त्री को नरक का द्वार समझकर उसके प्रति उपेक्षा के भाव से भरे रहे अन्त

में जब भारती से शास्त्रार्थ में पराजित होने लगे तब उन्हें नारी की अपरमित शक्ति का बोध हुआ और उन्होंने माता के रूप में शक्ति आराधना की तब कहीं उन्हें सफलता मिली। इसी प्रकार भगवान बुद्ध तपस्या में रत रहने पर इतने क्षीणकाय हो गये कि उनमें स्वयं लेकर पानी पीने की सामर्थ्य तक न रही। उस अवस्था में एक नारी ने उन्हें एक कटोरे में खीर का भोजन कराया। नारी की करुणा ने उनके जीवन में करुणा तथा शक्ति का का संचार कर दिया। जिसके आधार पर उन्होंने करुणा का सन्देश देशदेशान्तर में मानव मात्र तक पहुँचाया।

पत्नी भी अपने पति को देवत्व प्रदान करती है। सर्वप्रथम जब वह पति के माथे पर तिलक कर चरण स्पर्श करती है तथा कुछ भेंट देती है उसी क्षण पत्नी के हृदय की पराशक्ति पति के हृदय में संचरित हो जाया करती है। पत्नी उसे देव मानकर उस समय जो देवत्व बुद्धि से पति पूजन करती है उसके पति में देवत्व की अनुभूति का प्रारम्भ एवं विकास होता है। इसीलिए शास्त्रकारों ने पत्नी को पति की दीक्षा गुरु माना है। यदि सद्गुण परायणशील सम्पन्न पत्नी है तो पति के मन, बुद्धि, चित्त का रूपान्तरण आसानी से कर लेती है। पत्नी अपने मन को पति के मन में, बुद्धि को बुद्धि में, चित्त को चित्त में, अहंकार को अहंकार में, उभयविध लीन कर पति को परम पति में समर्पण करने की दीक्षा दे देती है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया कि पूर्ण समर्पण योग के द्वारा तू मुझे पा सकता है। उसका उपाय है—

मय्येव मन आधत्स्व,
मयि बुद्धिं निवेशय।
निवशिष्यसि मय्येव
अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

पूर्ण समर्पण का डिमोंस्ट्रेशन पत्नी अपने पति को देकर पति को क्रियायोग में प्रवृत्त कर देती है। यही कारण था चरणारविन्दों की ओर अभिमुख कर दिया। उसका छोटा सा कथन है—

अस्थि चर्म यह देह मम तामें ऐसी प्रीति।
होती जो रघुनाथ पद, तो क्यों होतीभयभीति॥

तुलसी के जीवन का मन्त्र बन गया और तुलसी महासिद्ध योगी बन गये। आजकल भी अनेकों पत्नियां अपने पतियों को बुरी तरह डांटती हैं किन्तु कोई पत्नी एक भी तुलसी पैदा नहीं कर सकी। पहले पत्नी में पति के प्रति देव-बुद्धि तो हो तथा उसका मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार पति के मन-बुद्धि-चित्त, अहंकार में लीन हो जाय तो वह पति के लिए शक्ति का स्रोत बन सकती है और उसे

ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी बना सकती है। जिस नारी के जीवन में सेवा, त्याग तथा शील नहीं होता वह अपने पति को कदापि आत्म साक्षात्कार की ओर प्रवृत्त नहीं कर सकती। जो प्रिय तथा मधुर भाषण करने वाली पत्नियां हैं वे साक्षात् देवी स्वरूपा हैं। वे अपने मन की शक्ति अपने पति को दे सकती हैं। ऐसी देवियों में स्वतः यह सामर्थ्य आ जाती है कि वे अपने संकल्प से पति को अपनी आयु भी दे देती हैं। तान्त्रिक साधनाओं में नारी ही मनुष्य की साधना का कारण बनती है। बिना स्त्री की कृपा के मनुष्य का मन कामना शून्य तथा अहंकार शून्य नहीं हो पाता।

श्री रामकृष्ण परमहंस उपासनाओं के सभी रहस्यों के मर्मज्ञ थे। उन्होंने अपनी अर्धाङ्गिनी मां शारदा की विशेष अवसरों पर जगज्जननी की भावना से षोडशोपचार पूजा की। मां शारदा की उस प्रकार की पूजा से उन्हें महामाया काली का अनुग्रह प्राप्त हुआ। महाकाली के दर्शन उन्हें यत्र-तत्र सर्वत्र होते रहा करते थे। साधना की कितनी उच्च अवस्था थी। मां शारदा (अपनी अर्धाङ्गिनी) में भी उन्हें जगज्जननी के दर्शन हुआ करते थे। महामाया दुर्गा की साधना करने वाले साधक पाठ के बाद कन्या पूजन करते हैं। नव रात्रियों में पाठ करने के बाद कन्यापूजन के पीछे शक्ति के आवाहन तथा अवतरण की भावना है। भागीरथ ने गंगा का अवतरण कराया। गंगा वही योग-शक्ति है जिसके अवतरण से यह शापित तथा तापित जीवन पुनीत बन जाता है। महर्षि मनु ने साधना के इसी रहस्य के लिए उद्घोष किया कि—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते,
रमन्ते तत्र देवताः।
यत्र ताः न पूज्यन्ते-
ऽफला सकला क्रियाः॥

अर्थात् वहां नारियों की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं और जहां नारियों का अपमान होता है वहां सारे पुण्य नष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक परिवार स्वर्ग बन सकता है, प्रत्येक समाज और देश स्वर्ग बन सकता है यदि साधना के इस रहस्य को समझ लें।

ऐ अज्ञानी मन, तू सदैव भगवान का स्मरण कर। भगवान की ही कृपा से तेरे सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। जिसकी कृपा से तुझे सत्य लाभ होता है उस परमेश्वर की मूरत मन में रख। उसके साथ तू अपने आपको एकरंग हो जाने दे। —श्री गुरु नानक

नारद पुराण से—

राजा जनक का श्री शुकदेव जी को
मोक्ष का स्वरूप बतलाना

प्रेषक : श्री मानिक चन्द ऊमर वैश्य

एक दिन मोक्ष धर्म का विचार करते करते हुए शुकदेव जी पिता व्यासदेव के समीप गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—भगवन् आप मोक्ष धर्म में निपुण है, अतः मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मेरे मन में परम शांति प्राप्त हो। पुत्र की यह बात सुनकर महर्षि व्यास ने उनसे कहा—'वत्स! नाना प्रकार के धर्मों का भी तत्त्व समझो और मोक्ष शास्त्र का अध्ययन करो।' तब शुकदेव जी ने पिता की आज्ञा से सम्पूर्ण योग-शास्त्र और कपिल प्रोक्त सांख्य शास्त्र का अध्ययन किया। तब व्यास जी ने समझ लिया कि मेरा पुत्र ब्रह्म-तेज से सम्पन्न, शक्तिमान तथा मोक्ष-शास्त्र में कुशल हो गया है। तब उन्होंने कहा—बेटा! अब तुम मिथिलेश जनक के पास जाओ, राजा जनक तुम्हें मोक्ष-तत्व पूर्णरूप से बतलायेंगे। पिता के आदेश से शुकदेव जी धर्म की निष्ठा और मोक्ष के परम आश्रय के सम्बन्ध में प्रश्न करने के लिए मिथिला-पति राजा जनक के पास जाने लगे। जाते समय व्यास जी ने फिर कहा—'वत्स! जिस मार्ग में साधारण पुरुष चलते हों, उसी से तुम भी यात्रा करना। मन में विस्मय अथवा अभिमान को स्थान न देना। अपनी योग शक्ति के प्रभाव से अन्तरिक्ष मार्ग द्वारा कदापि यात्रा न करना। सरल भाव से ही वहाँ जाना। मार्ग में सुख-सुविधा मत देखना। विशेष व्यक्तियों या स्थानों की खोज न करना। क्योंकि ये आसक्ति बढ़ाने वाले होते हैं। राजा जनक शिष्य और यजमान हैं। ऐसा समझकर उनके सामने अहंकार न प्रकट करना। उनके वश में रहना। वे तुम्हारे सन्देह का निवारण करेंगे। राजा जनक धर्म में निपुण तथा मोक्ष-शास्त्र में कुशल हैं। 'वे मेरे शिष्य हैं" जो भी तुम्हारे लिए आज्ञा दें, उसका संदिग्ध रहित पालन करना।'

पिता के ऐसा कहने पर धर्मात्मा शुकदेव मुनि मिथिला गये। यद्यपि समुद्रों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को वे आकाश मार्ग से ही लांघ सकते थे, तथापि पैदल ही गये। महामुनि

शुक विदेह नगर में पहुँचे। पहले राजद्वार पर पहुँचते ही द्वारपालों ने उन्हें भीतर जाने से रोका, किन्तु इससे उनके मन में कोई ग्लानि नहीं हुई। महायोगी शुकदेव जी भूख-प्यास से रहित हो वहीं धूप में जा बैठे और ध्यान में स्थित हो गये। उन द्वारपालों में से एक को अपने व्यवहार पर बड़ा क्षोभ हुआ। उसने देखा, शुकदेव जी दोपहर के सूर्य की भांति यहां स्थित हो रहे हैं। तब हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनका पूजन एवं सत्कार करके राजमहल की दूसरी कक्ष में उनको ले गया और उनको एक सुन्दर आसन पर बैठाया तथा राजा जनक जी को इसकी सूचना दी। राजा ने जब सुना कि शुकदेव जी मेरे पास आये हैं तो उनके हार्दिक भाव को समझने के लिए उनकी सेवा में बहुत सी युवतियों को युक्त किया। उन सबके वेश बड़े मनोहर थे। वे सबकी सब तरुणी और देखने में मन को प्रिय लगने वाली थीं। उन्होंने लाल रंग के महीन एवं रंगीन वस्त्र धारण कर रखे थे। उनके अंगों में तपाये हुए शुद्ध सुवर्ण के आभूषण चमक रहे थे। वे बात-चीत में बड़ी चतुर तथा समस्त कलाओं में कुशल थी। उनकी संख्या पचास से अधिक थी। उन सबने शुकदेव जी के लिए पाद्य, अर्घ्य आदि प्रस्तुत किये तथा देश और काल के अनुसार उत्तम भोजन व वस्त्र से तृप्त किया। फिर मन के भावों को समझने वाली ये युवतियां हँसती, गाती हुई उदार-चित्त वाले शुकदेव मुनि की परिचर्या करने लगी। शुकदेव मुनि का अन्तःकरण परम-पवित्र था। वे क्रोध और इन्द्रियों को जीत चुके थे तथा निरन्तर ध्यानमें ही स्थित रहते थे। उनके मन में न हर्ष होता था न क्रोध। संध्या समय होने पर शुकदेव जी ने हाथ-पैर धोकर संध्योपासना की। फिर वे पवित्र आसन पर बैठे और उसी मोक्ष-धर्म के विषय में विचार करने लगे। रात के पहले पहर में वे ध्यान लगाये बैठे रहे। दूसरे और तीसरे पहर में शुकदेव जी ने न्याय पूर्वक निद्रा को स्वीकार किया। फिर प्रातः काल ब्रह्मवेला में ही उठकर उन्होंने शौच-स्नान किया। तदनन्तर स्त्रियों से घिरे होने पर भी परम बुद्धिमान शुक पुनः ध्यान में ही लग गये। इसी प्रकार उन्होंने वह शेष दिन और सम्पूर्ण रात्रि राजकुल में व्यतीत की।

इसके बाद सुबह होने पर राजा जनक, पुरोहित तथा अन्तःपुर की स्त्रियों को आगे करके मस्तक पर अर्घ्यपात्र लिये गुरु-पुत्र शुकदेव जी के समीप गये। उन्होंने सम्पूर्ण रत्नों से विभूषित एक महान सिंहासन लेकर गुरु-पुत्र शुकदेव जी को अर्पित किया।

व्यास नन्दन शुकदेव जी जब उस आसन

पर विराजमान हुए, तब राजा ने पहले उन्हें पाद्य अर्पण किया, उसके बाद अर्घ्य सहित गाय निवेदन किया। महातेजस्वी द्विजोत्तम शुक ने मन्त्रोच्चारण-पूर्वक की हुई उस पूजा को स्वीकार करके राजा का कुशल-मंगल पूछा। राजा का हृदय और परिजन सभी उदार थे। वे भी गुरु-पुत्र से कुशल समाचार बताकर उनकी आज्ञा से भूमि पर बैठे। तत्पश्चात् व्यासनन्दन शुक से कुशल मंगल पूछकर विविज्ञ राजा ने प्रश्न किया। ब्रह्मन् किस लिए आपका यहाँ शुभागमन हुआ है।

शुकदेव जी बोले—राजन् आपका कल्याण हो। पिताजी ने मुझसे कहा है कि 'मेरे यजमान विदेहराज जनक मोक्ष-धर्म के तत्त्व को जानने में कुशल हैं। तुम उन्हीं के पास जाओ तुम्हारे हृदय में प्रवृत्ति या निवृत्ति के विषय में जो भी सन्देह होगा, उसका वे शीघ्र ही निवारण कर देंगे। इसमें संशय नहीं है।' अतः मैं पिताजी की आज्ञा से आपके समीप अपना हार्दिक संशय मिटाने के लिए यहाँ आया हूँ। आप धर्मात्माओं में श्रेष्ठ हैं, मुझे यथावत् उपदेश देने का कष्ट करें। राजन् 'मोक्ष का स्वरूप' कैसा है? उसे ज्ञान या तपस्या किस साधन से प्राप्त करना चाहिए। राजन् यदि किसी को ब्रह्मचर्य आश्रम में ही सनातन ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति हो जाय और हृदय के राग-द्वेष आदि द्वन्द्व दूर हो गये हों तो भी उस के लिए क्या शेष तीन आश्रमों में निवास करना अत्यन्त आवश्यक है।

राजा जनक ने कहा ब्रह्मन्! जैसे ज्ञान विज्ञान के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार सद्गुरु से सम्बन्ध हुये बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। गुरु इस संसार-सागर से पार उतारने वाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान नौका के समान बताया गया है। लोक की धार्मिक मर्यादा का उच्छेद न हो और कर्मानुष्ठान की परम्परा का भी नाश न होने पावे, इसके लिए पहले के विद्वान चारों आश्रमों के धर्मों का पालन करते थे।

इस प्रकार क्रमशः अनेक प्रकार के सत्कर्मों का अनुष्ठान करते हुए शुभाशुभ कर्मों की आसक्ति का त्याग हो जाने पर यही मोक्ष प्राप्त हो जाता है। अनेक जन्मों से सत्कर्म करते-करते जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पवित्र हो जाती है तब शुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष प्रथम आश्रम में ही उत्तम मोक्षरूप ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसे पाकर जब ब्रह्मचर्य आश्रम में ही तत्त्व का साक्षात्कार एवं मुक्ति सुलभ हो जाय तब परमात्मा को चाहने वाले जीवन मुक्त विद्वान के लिए शेष तीनों आश्रमों में जाने की क्या आवश्यकता है। विद्वान को चाहिये कि वह राजस और तामस दोषों का परित्याग कर दे और सात्त्विक मार्ग का

आश्रय लेकर बुद्धि के द्वारा आत्मा का दर्शन करे। जो सम्पूर्ण भूतों को अपने में और अपने को सम्पूर्ण भूतों में स्थित देखता है वह संसार में रहकर भी उसके दोषों से लिप्त नहीं होता और अक्षय पद को प्राप्त कर लेता है। इसमें संशय नहीं है—

न बिभेति परो यस्मान्न
बिभेति परांश्च यः।
यश्च नेच्छति न द्वेष्टि
ब्रह्म सम्पद्यते स तु॥
यदा भावं न कुरुते
सर्वभूतेषु पापकम्।
कर्मणा मनसा वाचा
ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
संयोज्य तपसाऽऽत्मान
मीर्ष्यामुत्सृज्यमोहिनीम्।
त्यक्त्वा कामं च लोभं
च ततो ब्रह्मत्वमश्नुते॥
यदा श्रव्ये च दृश्ये च
सर्वभूतेषु चाव्ययम्।
समो भवति निर्द्वन्द्वो
ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
यदा स्तुतिं च निन्दां च
समत्वेन च पश्यति।
कांचनं चायसं चैव
सुख-दुःखे तथैव च॥
शीतमुष्णं तथैवार्थ-
मनर्थं प्रियमप्रियम्।
जीवितं मरणं चैव
ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
प्रसार्येह यथाङ्गानि
कूर्मः संहरते पुनः।
तथेन्द्रियाणि मनसा
संयन्तव्यानि भिक्षुणाः॥
(नारद पुराण पूर्व. ५९-२९-३५)

अर्थात् जिसे मोक्ष शास्त्र में निपुण विद्वान् द्विज सदा धारण किये हुए है, अपने भीतर ही उस आत्म-ज्योति का प्रकाश है, अन्यत्र नहीं। वह ज्योति सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर समान रूप से स्थित है। समाधि में अपने चित्त को भली-भांति एकाग्र करने वाला पुरुष उसको स्वयं देख सकता है। जिससे दूसरा कोई प्राणी नहीं डरता, जो स्वयं किसी दूसरे प्राणी से भयभीत नहीं होता तथा जो इच्छा और द्वेष से रहित हो गया है, वह ब्रह्म भाव को प्राप्त हो गया है। जब मनुष्य मन, वाणी और क्रिया द्वारा किसी भी प्राणी की बुराई नहीं करता, उस समय वह ब्रह्मरूप हो जाता है। जब मोह में डालने वाली ईर्ष्या, काम और लोभ का त्याग करके पुरुष अपने आपको

तप में लगा देता है, उस समय उसे ब्रह्मानन्द का अनुभव होता है। जब सुनने और देखने योग्य विषयों में तथा सम्पूर्ण प्राणियों के ऊपर मनुष्य का समान भाव हो जाय और सुख-दुःख आदि द्वन्द्व उसके चित्त पर प्रभाव न डाल सके, तब वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। जिस समय निन्दा-स्तुति, लोहा, सोना, सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी, अर्थ-अनर्थ, प्रिय-अप्रिय तथा जीवन-मरण में समान दृष्टि हो जाती है। उस समय ब्रह्म-भाव को प्राप्त हो जाता है। जैसे कछुआ अपने अंगों को फैलाकर फिर समेट लेता है, उसी प्रकार संन्यासी को मनके द्वारा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए।

जिस प्रकार अन्धकार से व्याप्त हुआ घर दीपक के प्रकाश से स्पष्ट दीख पड़ता है, उसी प्रकार बुद्धिरूपी दीपक की सहायता से आत्मा का दर्शन हो सकता है।

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ शुकदेव जी उपर्युक्त सारी बातें मुझे आप में दिखाई देती है। इनके अतिरिक्त जो कुछ भी जानने योग्य विषय है, उसे आप ठीक-ठीक जानते हैं। ब्रह्मर्षे ! मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। आप अपने पिताजी की कृपा और शिक्षा के कारण विषयों से परे हो गये हैं। उसी महामुनि गुरुदेव जी की कृपासे मुझे भी यह दिव्य विज्ञान प्राप्त हो गया है। जिससे मैं आपकी स्थिति को पहचानता हूँ। आपका विज्ञान, आपकी गति और आपका ऐश्वर्य—ये सब आपमें अधिक हैं, किन्तु आपको इस बात का पता नहीं है। ब्रह्मन् आपको ज्ञान हो चुका है और आपकी बुद्धि भी स्थिर है, साथ ही आप में लोलुपता भी नही है परन्तु विशुद्ध निश्चय के बिना किसी को भी परब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती। आप सुख-दुःख में कोई अन्तर नहीं समझते। आपके मन मे तनिक भी लोभ नहीं है। आपको न नाच देखने की उत्कण्ठा होती है- न गीत सुनने की। आपका कहीं भी राग नहीं है। न तो बन्धुओं के प्रति आपकी आसक्ति है न भयदायक पदार्थों से भय। महाभाग ! मैं देखता हूँ—आपकी दृष्टि में अपनी निन्दा और स्तुति एकसी है। मैं तथा दूसरे मनीषी विद्वान भी आपको अक्षय एवं अनामय पथ (मोक्ष-मार्ग) पर स्थित मानते हैं। विप्रवर ! इस लोक में ब्राह्मण होने का जो फल है और मोक्ष का जो स्वरूप है, उसी में आपकी स्थिति है।

राजा जनक की यह बात सुनकर शुद्ध अन्तःकरण वाले शुकदेव जी एक दृढ़ निश्चय पर पहुँच गये और बुद्धि के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करके उसी में स्थित होकर कृतार्थ हो गये। उस समय उन्हें परम आनन्द और परम शान्ति का अनुभव हुआ। इसके बाद वे हिमालय पर्वत को लक्ष्य करके चुपचाप उत्तर दिशा की ओर चल दिये।

❋ ऋषिकेश का योग-महोत्सव ❋

❋ द्वारा आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

योगियों, ऋषियों, मुनियों तथा तपस्वियों की पावन तपस्थली देवतात्मा हिमालय के तोरण द्वार की तरह सुशोभित ऋषिकेश नगर में पतित पावनी भागीरथी के सन्निकट स्थित योग साधन आश्रम ऋषिकेश, रेलवे रोड, ऋषिकेश का वार्षिक योग महोत्सव का प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी भव्यता के साथ आयोजन किया गया था। यह आश्रम आनन्दकन्द कल्याण निधान योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की लीलास्थली होने से योग शक्तियों का सिद्धपीठ है जहां पर महाप्रभु जी ने अपनी करुणा-कृपाओं की अजस्र वृष्टि कर त्रय तापपीड़ित मनुष्यों को रोग, शोक एवं मोह से मुक्त कर योग शक्ति द्वारा शक्तिपात दीक्षा देकर हिमालय में समाधिस्थ कर अजर-अमर बना दिया, तथा आज भी आपकी कृपा अनंत श्री विभूषित योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के द्वारा उसी रूप में अहर्निश होती रहती है।

इस वर्ष १०, ११, १२ जून को योग महोत्सव का समायोजन बड़ी धूमधाम से किया गया। अनन्त श्री विभूषित श्री गुरुदेव जी महाराज एक जून को ही अपने शताधिक शिष्यों के साथ श्री सिद्धगुफा, सवांई, जिला आगरा से योग-साधन आश्रम पधार गये थे। प्रतिदिन प्रातः तीन बजे से जीवन-तत्व-साधन व योगासन - कक्षायें प्रारम्भ हो जाती थीं। तत्पश्चात् सभी भाई बहिन श्री गुरुदेव के साथ भगवती भागीरथी के पवित्र जल में स्नान करने जाते। इसके पश्चात् आरती, गीतापाठ तथा श्री गुरुदेव जी का श्री गीता पर सारगर्भित उपदेश होता था। गीता-पाठ का आयोजन तपोमूर्ति श्री गुरुदेव की गुरुबहिन द्रौपदी जी के आग्रह पर विशेष रूप से किया गया था। उपदेश के अनन्तर ध्यानाभ्यास का क्रम चलता था। इस प्रकार प्रायः दिनभर स्वाध्याय हरिकीर्तन, संगीत आदि कार्यक्रम चलता रहता।

महोत्सव का प्रारम्भ नगर प्रभातफेरी से हुआ। झांसी मण्डल तथा पौरा मण्डल के भाई-बहिन भक्ति-भाव एवं उल्लासोत्साह के साथ 'उठो सोने वाले, जगाने वाले आ गये।' 'योग का डंका बजाने वाले आ गये।' 'कष्टों

से छुड़ाने वाले आ गये।' 'प्रभु रामलाल तुम्हें हम न पहचान सके।' आदि उद्बोधक भाव-भीने गीतों को गाते हुए योग-ध्वज को गगन-मण्डल में उत्तोलित किये शनैः शनैः नगर की वीथियों में आगे बढ़ रहे थे और आगे-आगे नेतृत्व कर रहे थे आनन्दकन्द श्री महाप्रभु जी के सजग प्रहरी योगेश्वर श्री गुरुदेव जी महाराज। आपके पीछे शिष्य समुदाय 'योग को अपनाओगे, सच्चा जीवन पाओगे।' गीता का सन्देश है—योग को अपनाओ। भगवान श्रीकृष्ण का उपदेश है—योगी बन जाओ।' आदि गगन भेदी नारों से नगर वासियों को बरबस आकृष्ट कर रहे थे। नगरवासी अपने अपने भवनों से विस्फारित नयनों से प्रभात-फेरी यात्रा की शोभा निहार कर अपने नेत्रों को सफल कर रहे थे।

ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी को प्रातः महोत्सव का पण्डाल सुसज्जित कर दिया गया। महात्मा ज्ञानी बाबा के भजनों से उत्सव का श्री गणेश हुआ। प्रातः कालीन कार्यक्रम में भजन, संगीत के कार्यक्रमों के साथ-साथ श्री महाराज श्री के साधना सम्बन्धी उपदेश होते थे। महाराज श्री ने शक्ति तथा ज्ञान प्राप्त करने के उपायों को विस्तार से महाप्रभु जी के लीला चरित्रों तथा ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी के जीवन की घटनाओं का विवरण देकर समझाया। आपने 'मन्मना भव' 'मच्चित्तः सर्व दुर्गाणि संतरिष्यति' का उद्धरण देकर बड़ी शक्ति में अपने मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को ध्यानयोग द्वारा विलीन कर उन शक्तियों को अपने अन्दर प्रकट करने की विधियां सरल शैली में विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से साधकों को समझायी। ज्ञान वह है जो अन्दर की विभूतियों को प्रकट कर दे। ऐसा ज्ञान सिद्धानुकम्पा द्वारा प्रदत्त दिव्य दृष्टि के माध्यम से प्रकट होता है। ज्ञान प्राप्ति के लिए श्रद्धा, ध्यान या योगपरायणता एकान्त सेवन, संग दोष का परित्याग, युक्ताहार-विहार, सहनशीलता, संयतेन्द्रियता आदि गुण आवश्यक हैं। यदि साधक में पात्रता नहीं होगी तो उसे शक्ति मिलने पर भी वह उसको आत्मसात् नहीं कर पायेगा प्रत्युत अपने दुर्गुणों के छिद्रों से शक्ति को नष्ट कर खाली का खाली हो जायगा। सिंहनी का दूध सोने के पात्र में ही ठहर सकता है। योग विभूतियों का प्राकट्य उन्हीं में हो सकता है जो धनुर्धर पार्थ की तरह एक निष्ठ तथा ईश्वर प्रणिधान करने की क्षमता रखते हों एवं जिसमें तीव्रतम वैराग्य हो। इन्द्रिय-विषयों का लोलुप योग का अधिकारी नहीं है। श्री प्रभुजी अपने श्रीमुख से ऐसे साधकों को देखकर कहा करते थे—'भाण्डे तो मिले पर चुल्दे मिले।' अर्थात् पात्र फूटे हों तो योग-सिद्धि नहीं हो सकती। श्री गुरुदेव महाराज

जी ने सभी साधकों को अपनी नियमानुवर्तिता को पक्का करने की आज्ञा दी।

इसके अतिरिक्त जम्मू से पधारे महाराज जी के शिष्य शिष्य सन्त स्वभाव की साकार-मूर्ति, अनुभवी, योग-परायण श्री चैतन्य जी ने अपने साधनानुभव तथा शास्त्रों के सिद्धान्तों के माध्यम से अपने साधक भाई-बहिनों को साधना सम्बन्धी रहस्यों से अवगत कराया। हिमाचल प्रदेश से पधारे भाई पूर्णचन्द्र जी शास्त्री ने ईश्वर प्रणिधान के द्वारा समाधि सिद्धि का सारगर्भित भाषण देकर गुरु-भक्ति तथा इष्ट आराधना की प्रेरणा दी। महाराज श्री के प्रिय बच्चे प्रोफेसर मनमोहन जी चिखा उर्फ 'जान बची और लाखों पाये' ने लययोग के लिए निर्हेतुक तथा कामना-रहित प्रेमा-भक्ति के प्रसंग में मीराबाई की भक्ति का संकेत किया। मीराबाई में लयता थी उसके पूर्ण समर्पण भाव का ही परिणाम था कि वह नाचती और गाती थी। नाचने और गाने से प्रेम का आविर्भाव नहीं हो सकता। जब सच्चा प्रेम होता है तो नृत्य और गीत स्वयं उद्भूत होने लगते हैं। यह तभी सम्भव है जब प्रेम विशुद्ध हो। जो प्रेम का दिखावा करते हैं वे प्रेम नहीं करते, वासना तथा मोह का लेन-देन मात्र करते हैं। अन्य वक्ताओं में ब्रह्मचारी सूर्यप्रकाश का नाम भी उल्लेखनीय है। ब्रह्मचारी ने एकान्त सेवन के गुण दोषों की चर्चा करते हुए कहा कि अहंकार जब अज्ञान युक्त होता है तो एकान्त में भोग-वासना जगती है जब वही अहंकार ज्ञान-युक्त हो जाता है तो एकान्त से समाधि सिद्धि हो जाती है। जब तक अपने अन्दर एकान्त नहीं होता तब तक बाहर का एकान्त काम नहीं आता। कैवलीभाव की स्थिति की उपलब्धि ही सच्चा एकान्त है। अन्य वक्ताओं में महाराज श्री के पुराने शिष्य श्री श्यामलाल जी खन्ना ने यम-नियमों की आवश्यकता का प्रतिपादन अपने सुन्दर गायन तथा भजनों के माध्यम से किया।

उपदेशों के साथ-साथ महिला सत्संग का संचालन माता द्रौपदी जी के द्वारा मध्याह्न में किया गया। कुमारी उमा शर्मा ने भर्तृहरि के चरित्र का सुन्दर गायन कर साधकों के मन में योग-शक्ति के महत्व का बोध कराया। सुश्री उमाजी, ने अमरयोगी महाराज गोपीचन्द्र के योग चरित्र पर ललित पद्यात्मक रचनाओं को जनसमूह को सुनाकर भाव-विभोर बना दिया। लोगों ने नाथ सम्प्रदाय के अमर गुरु जालन्धर नाथ की योग शक्ति का परिचय भी इन्हीं कथाओं से जाना। झांसी मण्डल तथा पौरा मण्डल के सुन्दर भजन–कीर्तन भी कम आकर्षक नहीं थे।

महोत्सव के अन्तिम दिवस १२ जून को अति व्यस्त कार्यक्रम था। योग-दीक्षाओं के

अतिरिक्त ब्राह्मण भोजन दण्डी महात्माओं का भोजन तथा भण्डारे का कार्यक्रम सायंकाल तक चलता रहा। सायंकाल मिर्जापुर के भाई दूधनाथ आदि के भक्तिभावमय प्रयत्न से सात भव्य झांकियां सजाई गईं। एक झांकी में महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की शक्ति पुञ्जमयी दिव्य झांकी थी जिसकी स्थान-स्थान पर आरती तथा नीराजना होती जाती थी। दूसरी झांकी जटाजूट मंडित भगवान भूतभावन महेश्वर की सजाई गई थी। तीसरी झांकी अर्जुन को उपदेश देते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण की दिव्य बनी थी। अन्य झांकियों में राजा भर्तृहरि के वैराग्य से सम्बन्धित मार्मिक एवं उपदेशात्मक थीं। वैराग्य शतक में वैराग्यनिष्ठ योगी भर्तृहरि ने एक श्लोक लिखा है—यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता…… …. ।-इस श्लोक के आधार पर श्री गुरुदेव जी ने झांकियां बनवायीं थी। राजा भर्तृहरि को एक महात्मा अपनी तपस्या के फलस्वरूप देवों से प्राप्त अमृत फल को इस उद्देश्य से अर्पित कर रहा है कि यह धर्म परायण राजा इस अमृत फल से अजर-अमर होकर प्रजा का सुन्दर पालन-पोषण कर सकेगा। राजा भर्तृहरि उस अमृत फल को स्वयं न खाकर अपनी प्रेयसी को दे देते हैं। प्रेयसी वह फल स्वयं न खाकर अपने प्रिय नौकर को देती है। वह नौकर उस फल को पिंगला वेश्या को दे देता है। वेश्या अपने अधम कर्म का स्मरण कर अपने को उस फल की अधिकारिणी नहीं समझती। वह राजा के गुणों से अनुरक्त होकर उस अमृत फल को राजा को भेंट करती है। इस चक्र को देखकर राजा को वैराग्य हो जाता है और वह सभी धिक्कारता हुआ (धिक् तांश्चतञ्च मदनञ्च इय ञ्च माम् च) योगी गोरखनाथ की शरण में जाकर योगी बन जाते हैं। इन झांकियों के प्रदर्शन के साथ-साथ कीर्तन-भजन तथा योगासनों का प्रदर्शन देखने भीड़ का समुद्र दिखाई पड़ रहा था। ऋषिकेश में इस प्रकार की झांकियों के द्वारा नगर शोभा यात्रा अभूतपूर्व थी।

इस प्रसंग में इस महोत्सव का एक महत्व पूर्ण अङ्ग योग क्रियाओं का प्रदर्शन विशेष उल्लेखनीय है। ब्रह्मचारी सूरजप्रकाश, ब्रह्मचारी वेदराम तथा ब्रह्मचारी काशीनाथ, ज्ञानी बाबा एवं रायसेन के बाल-गोपाल सुपुत्र श्री आर० के० सिंह सिसोदिया, जिला शिक्षाधिकारी, रायसेन ने आसनादि योग-क्रियाओं का मनोहारी प्रदर्शन किया। ब्रह्मचारी बलराम ने प्राणशक्ति के द्वारा लोहे की छड़ें मोड़ना, पत्थर को छाती पर रखकर हथौड़े से तुड़वाना, कांच पर लेटना आदि कार्यक्रम प्रस्तुत किये। इस प्रकार यह उत्सव मधुर स्मृति छोड़कर सानन्द सम्पन्न हो गया।

मुक्ति का उपाय और उसके विघ्न

❀ श्री हीरालाल शास्त्री, फर्रुखाबाद

योगी को ज्ञान प्राप्ति होने पर अज्ञान का वियोग होने पर जो परिस्थिति साधक के हृदय में हो जाती है उसी को मुक्ति कहते हैं। वही ब्रह्म के साथ एकता और प्राकृत-गुणों से सम्बन्ध विच्छेद होना कहा जाता है।

मुक्ति की प्राप्ति– वास्तव में मुक्ति योग से होती है और योग सम्यक् ज्ञान से होता है सम्यक् ज्ञान वैराग्य जनित दुःख से और उस दुःख का कारण ममता से—यह ममता स्त्री, पुत्र, धन, जायदाद आदि में चित्तकी आसक्ति होने से होती है।

निष्कर्ष—अतः मुक्ति की इच्छा रखने वाला योगी पुरुष आसक्ति को दुःख का मूल कारण समझकर यत्नपूर्वक उसके त्याग में तन्मय होकर रहे, आसक्ति न होने पर यह मेरा है यह तेरा है ऐसी धारणा दूर हो जाती है। इस प्रकार ममता का त्याग पूर्णतया होने पर सुख ही सुख है। यही सुख साधन होना वैराग्य कहा जाता है। वैराग्य से सांसारिक विषयों में दोष दर्शन हो जाता है। इस प्रकार ज्ञान से वैराग्य और वैराग्य से ज्ञान होता है। जहाँ रहें वही घर है जिससे जीवन चलता रहे वही भोजन है। इसी प्रकार जिससे मोक्ष मिले वही ज्ञान कहा जाता है इसके सिवा सब अज्ञान ही है इसीलिये—'ऋते ज्ञानान्न-मुक्तिः' कहा गया है। पुण्य और पापों को भोग लेने से नित्य-कर्मों का निष्काम भाव से अनुष्ठान करने से पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों का क्षय हो जाने से मनुष्य बारम्बार देह के बन्धन में नहीं पड़ता यही मुक्ति कही जाती है। सनातन ब्रह्म से योगी पुरुष कभी अलग नहीं होता। उसके उपाय यह हैं :

प्रथम—आत्मा (बुद्धि) के द्वारा मन को जीतने की चेष्टा करनी चाहिए। वास्तव में उसको जीतना अति दुष्कर है अतः उस पर विजय प्राप्त करने के लिये सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए।

प्राणायाम के द्वारा रागादि दोषों का, धारणा के द्वारा पापों का, प्रत्याहार के द्वारा विषयों का और ध्यान के द्वारा ईश्वर विरोधी गुणों का निवारण यत्नपूर्वक करे।

प्राणायाम के गुण और आवश्यकता—पर्व-तीय खनिज धातुओं को आग में जलाने से जैसे उनके सभी दोष जलकर शुद्ध हो जाते हैं

इसी प्रकार प्राणायाम से इन्द्रिय जनित दोष दूर हो जाते हैं। अतः सबसे पहले प्राणायाम करे। प्राणायाम तीन प्रकार का होता है। लघु, मध्य, उत्तम। लघु प्राणायाम की १२ मात्रा होती है मध्य की इससे दूनी और तिगुनी मात्रा वाला उत्तम प्राणायाम कहा जाता है। नेत्रों के पलकों को उठाने और गिराने में जो समय लगता है वह एक मात्रा कही जाती है इस प्रकार की १२, २४, ३६ मात्रा प्राणायाम की है। जिस प्रकार सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि वन जन्तु सेवा से वश में होकर कोमल हो जाते हैं इसी प्रकार प्राणायाम सिद्ध योगी वश में किये हुये अपने प्राणवायु को अपनी इच्छानुसार वश में कर लेता है इससे रागादि दोष सब दूर हो जाते हैं।

ध्वस्ति, प्राप्ति, संवित प्रसाद ४ प्रकार का कहा गया है। ध्वस्ति–जिससे शुभ, अशुभ सभी कर्मों का फल क्षीण हो जाय और चित्त की वासना नष्ट हो जाय उसे ध्वस्ति कहते हैं। जब लोक, परलोक के भोगों में लोभ, मोह न रहे सदा अपने में सन्तुष्ट रहे इस प्रकार निरन्तर रहने वाली अवस्था प्राप्ति कही जाती है। जब सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों के समान प्रभावशाली होकर उत्तम ज्ञान प्राप्त करके भूत, भविष्य की बातों को दूर स्थित एवं अदृश्य वस्तु को भी जान लेता है वह संवित कही जाती है।

प्रसाद—जब प्राणायाम से मन प्राणादि पांच वायु, सम्पूर्ण इन्द्रियां और इन्द्रियों के विषय-प्रसाद को प्राप्त हो जाय वह प्रसाद प्राणायाम कहा जाता है।

आसन—फिर किसी पद्मासन आदि में स्थित होकर प्राणायाम का अभ्यास करे। जिसका विधान फिर विशेष रूप से पाठकों की इच्छा होने पर लिखूंगा। सूक्ष्मतः स्थिर आसन पर बैठकर सिर, गला, छाती को एक सीध में रखकर कम से कम ढाई घण्टे तक शरीर निश्चल हो जाय तब आसन सिद्धि को समझें जिसमें देह किसी प्रकार हिल-डुल न सके। इसके बाद प्राणायाम करे तो शीघ्र ही सिद्धि योगी को प्राप्त हो जाती है केवल कछुआ की तरह अपने सभी अङ्गों को स्थिर होकर रहे तब योग सिद्ध प्राणायाम होता है। इसके सिद्ध होने पर धारणा का अभ्यास सब इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से हटाकर मन में स्थिर करके योग साधन करे। इसके बाद शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए सर्वाभूषणों से सुशोभित चतुर्बाहु भगवान विष्णु का ध्यान अपने हृदय में करे, यहां तक कि चित्त तन्मय होकर धीरे-धीरे हृदय में प्रकाश होकर भगवान स्वरूप में दृढ़ हो जाय। योगदर्शन—

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा–तत्रप्रत्यैकतानताध्यानम्।

विघ्न—सांसारिक कामना किसी प्रकार के भोग, स्त्री, पुत्र, स्वर्गादि इन्द्रत्व पाना रसायन संग्रह उड़न शक्ति अग्नि जल प्रवेश आदि इच्छा योगी करे तो योगी प्रयत्न करके उन कामनाओं से अपने चित्त को हटा कर परब्रह्म परमात्मा के चिन्तन में लगावे तो इन विघ्नों से छुटकारा पा जाता है। इन विघ्नों के दूर हो जाने पर फिर योगी के सामने सात्त्विक, राजस, तामस विघ्न उपस्थित होते है वे प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त यह पाँच विघ्न योगी के सामने प्रकट होकर विघ्न करते हैं। इनका परिणाम अधिक दुःखप्रद होता है।

प्रातिभ—वेद, शास्त्र, विद्यायें शिल्पकला आदि पैदा होती हैं जब अपने आप यह सब समझ में आ जाँय और पूर्ण ज्ञान हो जाय तो प्रातिभ कहा जाता है।

श्रावण—सहस्रों योजन दूर से शब्द सुन ले और उनका अभिप्राय समझले तो श्रवण से सम्बन्ध रहने के कारण श्रावण कहा जाता है।

दैव—जब आठों दिशाओं की वस्तुओं को प्रत्यक्ष की भांति देखने लगता है तब देवताओं की इस शक्ति के प्राप्त होने पर दैव उपसर्ग कहा जाता है।

भ्रम—जब मन के दोष के कारण आचारों से भ्रष्ट होकर निराधार भागने लगता है तब भ्रम कहलाता है।

आवर्त—जब जल में उठती हुई भ्रमर की तरह ज्ञान का आवर्त होकर चित्त को नष्ट कर देता है तब आवर्त नामक विघ्न कहलाता है।

इनका फल—इन विघ्नों से योग का नाश होकर सम्पूर्ण योगी देव-तुल्य होकर भी ज्ञानमूल के चक्र में घूमने लगता है। अतः मन को शुद्ध करने परब्रह्म में लीन करने का प्रयत्न करे। ✲ ✲

भगवान का ऐश्वर्य चतुर्दिक बिखरा पड़ा है, पर उधर विरले पुरुष ही अपनी दृष्टि ले जा पाते हैं। योगदर्शन भगवान या ईश्वर को ऐसा पुरुष विशेष मानता है, जो क्लेश, कर्म-विपाक और आशय से अपरामृष्ट अथवा असम्पृक्त है। क्लेश का मूल कर्माशय अर्थात् वासना जाल है। यह जीवात्मा के साथ तब तक लगा रहता है, जब तक वह मुक्त होकर भगवान नहीं बन जाता या उनके पास नहीं पहुँचता। कर्माशय-रूप मूल के रहने से जाति, आयु और भोग जीवात्मा के साथ लगे रहते हैं। उसे बार-बार जन्म लेना पड़ता है और एक योनि से दूसरी योनि में जाना पड़ता है। परन्तु ये ही कर्म परमात्मा को बन्धन में नहीं डालते।

卐 卐

अल्पवीर्या सिद्धियां

जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ।

जन्म से, औषधि के सेवन से, मन्त्रों के अनुष्ठानों से, तप और समाधि से उत्पन्न होने वाली पांच प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं।

योगदर्शन के तीसरे पाद में जिन सिद्धियों को कहा गया है वे सब समाधिजा सिद्धियां हैं। यदि कोई योगी योग-भ्रष्ट होकर दूसरा जन्म ग्रहण करे तो उसे उसकी पूर्वजन्मोपार्जित सिद्धियां जन्म से ही प्राप्त हो सकतीं हैं अथवा औषधि, मन्त्र या तप का निमित्त पाकर प्रकाश पा जाती हैं।

श्री स्वामी विष्णुदेव जी तीर्थ इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि—जन्म, औषधि, मन्त्र तथा तपसे उत्पन्न होने वाली सिद्धिया स्थिर नहीं रहतीं और अल्पवीर्या होती हैं। उनको कल्पिता सिद्धियां कहते हैं। समाधि से आने वाली सिद्धियां वासना रहित चित्त में आत्म–शक्ति की स्वाभाविक बाढ़ का परिणाम हैं। वे स्थिर भी होती हैं औ. महावीर्या भी। उन्हें अकल्पिता सिद्धियां कहते हैं। वासनाओं का बीज राग, द्वेष और अभिनिवेश में रहता है। चित्त जब वीतराग हो जाता है और अ मता मात्र रह जाती है, तब उस वासना रहित चित्त में उन सिद्धियों का प्रादुर्भाव होता है।

यद्यपि सिद्धियां आत्मा की शक्तियों की ही अभिव्यक्ति मात्र है, परन्तु उनका आधार प्रकृति ही है।

C Sharama माणिकचन्द शर्मा २५६

SIDHAYOGA Regd. No. L. AG. 08

विचार-संग्रह

अपरिग्रह व्रत जिस प्रकार बाह्य वस्तुओं के लिए लागू होता है उसी प्रकार बौद्धिक विचारों और लौकिक विचारों पर भी लागू होता है। इसलिए कह रहे हैं कि ज्ञान संचय में भी अपरिग्रह की वृत्ति रखनी चाहिए। जिस ज्ञान से सारे समूह को सच्चा सुख और सच्ची शान्ति प्राप्त हो वही ज्ञान प्राप्त किया जाय। बाकी ज्ञान को निरुपयोगी समझ कर छोड़ देना चाहिए। संग्रह वृत्ति के पीछे जो लोग पागल हुए रहते हैं वे ऐसी सब चीजें बटोर कर रखते हैं जो निकम्मी होती हैं जिनका उन्हें कोई उपयोग नहीं होता। अक्सर देखा देखी और स्वार्थ वश आदमी संग्रह बढ़ाता जाता है जिसमें कोई विवेक नहीं रहता।

इसी प्रकार निरर्थक ज्ञान संचय करना भी निरा पागलपन है। निरर्थक ज्ञान से जीवन के विकास में लक्ष्य प्राप्ति में सत्य शोधन में कोई लाभ नहीं होता। विवेक हीन संचय पागलपन नहीं तो क्या है। दिमाग में जब विचारों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है जब अनावश्यक जमाव हो जाता है तब उसके परिणाम स्वरूप बुद्धि भ्रमित हो जाती है।

—श्री बालकोबा भावे

... 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां, ताजगंज, आगरा-१ फोन ६३१६८